मंदिर

[सात एकांकी नाटक]

लेखक
हरिकृष्ण 'प्रेमी'

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग
[सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली के संचालन में]

संस्करण

मार्च १९४२ : २०००

मूल्य

बारह आना

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री,
सस्ता साहित्य मण्डल,
नयी दिल्ली

मुद्रक

काशीप्रसाद वाजपेयी
प्रकाश प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

ज्योति

दो वर्ष की उत्सुक प्रतीक्षा के पश्चात मैं अपने ये एकांकी नाटक छपे हुए देख रहा हूँ। मैं समय की बाढ़ में बहता हुआ एक तिनका हूँ। अपनी गति पर जैसे मेरा ही बस नहीं। 'मन्दिर' के प्रकाशन में जो विलम्ब हुआ है, उसका यही कारण है।

हिंदी में इन दिनों एकांकी नाटक बहुत लिखे जा रहे हैं। नयी सभ्यता ने मनुष्य की वासना को उत्तेजित कर दिया है—उसकी आवश्यकताएँ बढ़ गयी हैं—अतृप्ति की आग से सम्पूर्ण संसार झुलस रहा है। कर्म के चक्र में वह बेतरह चक्कर काट रहा है। उसके पास 'साहित्य' पढ़ने के लिए अधिक समय नहीं है। थकावट के समय उसे साहित्य नाम की कुछ चीज़ चाहिए तो सही, लेकिन ऐसी जो उसका बहुत समय न ले। इसीलिए आज उपन्यासों के स्थान पर छोटी कहानियाँ चाहिएँ, और पाँच अंक या तीन अंक के नाटकों के स्थान पर एक अंक के छोटे-छोटे नाटक। एकांकी नाटकों की माँग इसीलिए है।

एकांकी नाटक-लेखक के रूप में पाठक मुझे नहीं जानते—किंतु, मुझे भरोसा है कि वे मुझे इस रूप में पाकर प्रसन्न होंगे। मेरे साहित्य में नैतिकता के दर्शन करके नये युग के समालोचक नाक-

भौं सिकोड़ते हैं; किंतु, मैं समझता हूँ—विकृति को हम प्रगति सिद्ध करने का प्रयत्न न करें यही ठीक है। संसार के बनाने-बिगाड़ने में साहित्य का बहुत बड़ा हाथ है—समाज के प्रति साहित्यकार का कुछ कर्त्तव्य है—और साहित्यकार के प्रति समाज का ऋण। इस लेन-देन में बेईमानी नहीं होनी चाहिए।

एकांकी नाटकों के खाते में 'मन्दिर' मेरी पहली किश्त है। मैं अपने पाठकों से स्नेह और आशीर्वाद की भीख माँगता हूँ जिससे मैं उनकी सेवा करने में समर्थ बनूँ।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

प्रिय भगवानदास को

तुम मिटे, मुझको बनाया।
तुम बुझे, मुझको जलाया।
मैं तुम्हें क्या दूँ बताओ।
भार मेरा भी उठाओ।

आज मन्दिर में मनोहर मूर्ति मैंने जो सँभारी।
मैं समझता हूँ कि उसमें स्फूर्ति हँसती है तुम्हारी।

—हरिकृष्ण 'प्रेमी'

सूची

मंदिर

[सात एकांकी नाटक]

: १ :

सेवा-मन्दिर

पहला दृश्य

[हरिपुरा गाँव की नामहीन नदी के तट पर राधा बगल में खाली घड़ा दबाये आती है। राधा इस गाँव के एक कुलीन ब्राह्मण की पुत्री है। पिछले साल उसका विवाह हुआ था और वर्ष समाप्त होने के पहले ही उसकी माँग का सिंदूर पुछ गया। यौवन ने उसके अंग-अंग को गुलाब के फूल की तरह खिला रखा है। वैधव्य ने उसकी आँखों में विषाद के जो बादल छा दिये हैं उससे वह और भी अधिक मधुर हो गयी है। राधा घाट पर घड़े को रखकर बैठ जाती है और पानी में संध्या के सुनहले बादलों की जो छाया पड़ रही है उसे देखती रहती है।]

राधा—यह सुनहरी बादलों की छाया नदी के पानी में कितनी सुन्दर जान पड़ती है, किन्तु, अभी अँधेरा छा जावेगा और इन लहरों में केवल आकाश के आँसू ही दिखाई देंगे। मेरा भविष्य एक भयानक अन्धकार है, उसमें इस बिजली-से-रूप-यौवन को छिपाकर मैं कैसे चलूँगी!

[माधव का प्रवेश]

माधव—कौन राधा! तुम लौट आयी हो।

राधा—हाँ, मैं लौट आयी हूँ, लेकिन........

माधव—वह बात मुँह से कहने की क्या आवश्यकता है, राधा! तुम्हारी सिंदूरहीन माँग, चूड़ीविहीन कलाइयाँ सब कुछ कह रही हैं।

[राधा रोती है]

तुम रोती हो, राधा ! लेकिन रोने से जीवन की घड़ियाँ कम नहीं होती। अन्तर् की आग नहीं बुझती।

राधा—लेकिन प्राणों में जो ज्वालामुखी जलता है......

माधव—वह आँखों के पानी से नहीं बुझ सकता। तुम्हें याद हैं अपने बचपन के दिन ! इन नदी-किनारे के कुंजों में हम आँख-मिचौनी खेला करते थे, तुम मुझसे छिपती फिरती थीं, मैं तुमसे !

राधा—वे दिन भूले नहीं जा सकते ! हम बड़े हुए और हमारा खेल भी बड़ा हुआ। मैं तुमसे छिपने के लिए विवाह की ओट में चली गयी। मैं तुमसे मिलना तो चाहती थी, लेकिन मैं कुलीन ब्राह्मण की कन्या और तुम कायस्थ के छोकरे, हमारे मिलन-मार्ग में समाज ने खाई खोद दी थी।

माधव—हाँ, राधा इसलिए हम केवल खेल सकते थे। एक-दूसरे से मिलने की इच्छा प्राणों में पाले हुए एक-दूसरे से छिपते फिरना ही हमारे भाग्य में बदा है।

राधा—लेकिन, माधव !

माधव—क्या राधा !

राधा—अब तो हम मिल सकते हैं। जिस ओट में मैं खड़ी थी वह गिर चुकी है। तुम आकर मुझे पकड़ लो।

माधव—तुम यह क्या कहती हो, राधा ! यह पाप !

राधा—पाप नहीं माधव, यह स्वाभाविकता है। तुम्हारा प्रेम मेरी रग-रग में प्रवाहित हो रहा है। समाज ने मुझे किसी दूसरी काया से बाँध दिया था इसीसे तो मैं परायी नहीं हो गयी। मैं

सच कहती हूँ, माधव, यह फूल अभी तक पवित्र है। उस तपैदिक के मरीज़, कुलीन ब्राह्मण ने इसपर अपने ओठ नहीं लगाये हैं। तुम इसे अपनी पूजा में लेलो।

माधव—तुम हिन्दू नारी हो!

राधा—नहीं, मैं एक दुर्बल नारी हूँ। मुझे भूख लगती है। मुझे प्यास लगती है। मुझे भोजन चाहिए, मुझे पानी चाहिए। तुम मेरे हृदय की भूख मिटाओ, माधव! तुम मेरे प्राणों की प्यास मिटाओ, नहीं तो......

माधव—नहीं तो!

राधा—नहीं तो मैं गंदे नाले का पानी पिऊँगी। मैं पिशाचिनी हो जाऊँगी। संसार सोने के घड़े में विष लेकर खड़ा है, ऐसा विष जो आत्मा को मार डालता है, काया को नहीं।

माधव—राधा!

राधा—माधव! तुमने बचपन में पेड़ों पर चढ़कर तोड़-तोड़कर फल खिलाये हैं। अब जवान होने पर मुझे भूखों मारोगे? लेकिन यह काया भूखी नहीं रहना चाहती। जो इसे भूखी रखना चाहते हैं वे प्रकृति के विरुद्ध चलते हैं। पराजित होते हैं। रात्रि के अंधकार में वे अपनी भूख मिटाते हैं। मैं दिन के प्रकाश में...

माधव—दिन के प्रकाश में समाज से विद्रोह करना चाहती हो। इतना बल तुममें हो सकता है, मुझमें तो नहीं है। मुझे तुम्हारा लोभ बचपन से ही रहा है। मैं तुम्हारे अस्तित्व को अपने प्राणों में भरे हुए संसार में विक्षिप्त-सा घूम रहा हूँ। किसी कार्य में मेरा मन नहीं लग रहा। मैंने समझा था तुम

दूर हो। स्मृति के आकाश में तुम्हारी मूर्ति को स्थापित करके उसके चरणों पर आँसुओं का अर्घ्य चढ़ाना ही मैं अपना धर्म समझता था। आज वह मूर्ति प्रकट होकर कह रही है, तुम मुझे ले लो। मैं संसार की आँखों में पापी बनने से नहीं डरता, लेकिन मेरी इष्टदेवि, तुम क्यों अपने आसन से नीचे उतरती हो ? भारतीय नारी की ऋषियों ने जो कल्पना की है वह सांसारिक वासना से बहुत ऊँची है। तुम वहीं बैठो राधा!

राधा—तुम मेरा अपमान करते हो!

माधव—मैं अपमान नहीं करता राधा! तुम स्वयं अपना अपमान कर रही हो। तुम अपने अन्दर छिपी शक्ति को नहीं पहचानतीं।

राधा—मेरा जीवन मेरा अपना है। समाज उसका स्वामी नहीं है। मैंने बचपन से तुम्हारे चरणों पर अपना हृदय-सुमन रखा था, वहाँसे उठाकर किसी ने दूसरी जगह रख दिया था। वह पाप था।

माधव—उस पाप को तुम पुण्य बनालो, राधा!

राधा—और अपने जीवन को नरक बना लूँ। यह मुझसे न होगा (तनककर माधव के सामने खड़ी होती है, अपने सर से साड़ी खिसका देती है) मुझे देखो माधव अच्छी तरह देखो। मैं बचपन की राधा नहीं हूँ। मेरी साँसों की धड़कन में भूकंप का आह्वान है, मैं अपनी ही वासना के वेग से टुकड़े-टुकड़े हो जाऊँगी। तुम अपनी इष्टदेवी को अन्धकार की ओर मत जाने दो।

माधव—मैं जानता हूँ, राधा, तुम्हारे पास रूप है, धन है, और

भावुक हृदय है। इन त्रितापों की लपटों में तुम झुलसी जा रही हो। मेरी स्मृति, यदि प्रकाश दे सके तो मैं अपने को धन्य समझूँगा। तुम मेरी मिट्टी का मोह छोड़ दो। राधा! तुम आज आयी हो और मैं आज जा रहा हूँ। इस गाँव को छोड़कर जा रहा हूँ। जबतक तुम मुझे अप्राप्य थीं मैं अपने पशु को पराजित कर सकता था; लेकिन अब! मैं तुमसे भी अधिक दुर्बल हूँ। मैं चला जाऊँगा, ताकि दुर्बल क्षणों में कहीं मुझे तुम्हारी मिट्टी का मोह न हो जावे। भगवान तुम्हें बल दे राधा! बिदा!

[माधव का प्रस्थान]

राधा—वह चला गया! अभी तक मैंने अपने आपको सुहागिन समझा था। क्या अब विधवा समझना होगा? समाज ने मेरे साथ जो खेल किया था क्या अब उसे स्वीकार करना होगा?

[घड़े में पानी भरकर सिर पर रखती है।]

अब मेरे सिर पर बोझ बढ़ गया है। रास्ते में रपटन है। मुझे डर है कहीं मैं गिर न पड़ूँ।

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[राधा अपनी ससुराल के घर में अपने कमरे मे आइने के आगे खड़ी है। अपने लम्बे-लम्बे बालों को कंघे से सुलझा रही है।]

राधा—(बालों को हाथ में लेकर) अपने सर पर इतना अंधकार लादे, वैधव्य के सूनेपन में जीवन का मार्ग कैसे पार कर

सकूँगी ! जो हृदय अभी मरा नहीं है उसे लोग धड़कने से मना क्यों करते हैं ? लोग कहते हैं जीवन सरपट दौड़ा चला जा रहा है, लेकिन मुझे तो एक क्षण भी पहाड़ जान पड़ता है। चारों ओर भयंकर लपटें हैं। उसके भीतर होकर इतना लम्बा रास्ता पार करना है। ऋषियों की आज्ञा है शरीर पर एक भी झुलस न आवे, नहीं तो तुम्हारे लिए नरक में स्थान होगा।

[बाहर किसी मकान में नृत्य-गान छिड़ रहा है। गाना स्पष्ट सुनायी दे रहा है।]

प्राण क्यों प्यासे रहें ये

पी रहा संसार प्याले !

[गाने की आवाज़ राधा को चौंका देती है।]

राधा—यह कौन मेरे ही हृदय का गीत गा रही है ! आज मेरा मन बहुत बेचैन हो रहा है।

[कंघा वहीं शृंगार-दान पर पटककर आलमारी के पास जाकर उसमें से एक फ़ोटो निकालती है और उसे देखती है। गीत आगे बढ़ रहा है।]

बह रही सरिता छलकती

भर रहे घट लोग आकर।

प्यास अपनी तू बुझाती

क्यों न उसके तीर जाकर ?

व्यर्थ मुँह क्यों फेरती है

सामने मधु-धार पाकर ?
पाप इसमें कौनसा, तू
प्यास प्राणों की बुझाले ।
प्राण क्यों प्यासे रहें ये
पी रहा संसार प्याले ।

गा रही कोयल किसी तरु की
शिखा पर गान प्यारा ।
चाँद अवनी पर बहाता
है सुधा की श्वेत धारा ।
तू विमन क्या सोचती है ?
है जगत् उन्मत्त सारा ।
तू स्वयं क़ैदिन बनी है
रात-दिन बन्धन सम्हाले ।
प्राण क्यों प्यासे रहें ये
पी रहा संसार प्याले ।

रात आयी है सजाकर
फूल तारों के मनोहर ।

पर्वतों के भी हृदय से

फूटते रस-राग-निर्झर ।

तू किधर जाती अकेली

रूप का यह बोझ ढोकर ?

क्या घटेगा राह में

दो बूँद पंछी जो चुरा ले ।

प्राण क्यों प्यासे रहें ये

पी रहा संसार प्याले !

[गीत समाप्त हो जाता है । राधा फिर आइने के सामने खड़ी हो जाती है । एक बार हाथ की तस्वीर देखती है, दूसरी बार आइने में अपनी छवि ।]

राधा—(तस्वीर को देखती हुई) एक दिन मैंने तुमसे कहा था, 'प्राण क्यों प्यासे रहें ये पी रहा संसार प्याले ।' किंतु तुम निष्ठुर हो ! तुम चले गये ! मेरे जीवन में एक और अतृप्ति की आग जलाकर । जिस ऊँचे आकाश में बैठकर तुम अपनी इष्ट देवी की आराधना करते हो वहाँ मेरा हाड़-मांस का शरीर नहीं जा सकता । मैं पाप की ज्वाला से अपने ओठ जलाऊँगी स्वयं जलूँगी और संसार को जलाऊँगी । [फिर आइने में देखती है । वहाँ उसे एक पुरुष की आकृति नज़र आती है । वह चौंक पड़ती है । उसके हाथ से तस्वीर छूट जाती है । फिरकर देखती है । क्रोध से आँखें लाल करती है, किन्तु पीछे खड़ा हुआ उसका देवर कमल केवल मुसकरा देता है । वह आँखें नीची कर लेती है ।]

कमल—भाभी !

राधा—देवर !

कमल—यह बड़ा जुल्म है !

राधा—किसपर ?

कमल—तुमपर ।

राधा—किसका ।

कमल—विधाता का !

राधा—राधा पर विधाता का जो जुल्म है उसकी कमल को क्यों चिन्ता है ?

कमल—यह मैं भी सोचता हूँ कि ऐसा क्यों है ? जो ज्वाला है वह पतंगों को आमंत्रित करती ही है । ज्वाला पतंगों से पूछती है वे क्यों आते हैं ? जिन दीप-शिखाओं पर आवरण होते हैं उन आवरणों के चारों तरफ वे चक्कर लगाते हैं ।

राधा—लेकिन क्या मनुष्य भी ऐसा ही करे ?

कमल—मैं ऐसा नहीं कहता कि मनुष्य भी ऐसा ही करे । लेकिन मनुष्य भी जानवर है । वह अपनी वासना को छिपाना चाहता है और जानवर नंगा है । वास्तव में देखा जाये तो प्राणी-मात्र का स्वभाव एक है । प्रत्येक ऋतु अपने उपहार और अपनी आवश्यकताएँ लेकर आती है और मनुष्य के जीवन की भी ऋतुएँ होती हैं । उन ऋतुओं के उपहार और आवश्यकताएँ होती हैं । उन उपहारों को ग्रहण करना और आवश्यकताओं को पूरा करना मानव-हृदय का स्वाभाविक धर्म है ।

राधा—तुम मुझसे क्या कहने के लिए रात के समय आये हो ?

कमल—तुम्हारी सिंदूर की डिबिया कहाँ है ?

राधा—वह दो वर्ष से आलमारी में बन्द पड़ी है।

[कमल डिबिया उठा लाता है]

कमल—बुरा न मानो, मैं तुम्हारे साथ खेल करता हूँ। (मस्तक में सिंदूर भर देता है) अब ज़रा आइने में देखो। तुम्हारा हाहाकार अब हँस पड़ा न!

[राधा आइने में देखती है।]

राधा—और मेरा वैधव्य रो पड़ा न! रहने दो देवर, जो लकीर विधाता ने पोंछ दी उसे दुबारा भरने से लाभ ही क्या! जब सबेरे आकाश लाल होगा तब संसार लाल आँखें करेगा।

कमल—(आइने के सामने राधा की बगल में खड़ा हो जाता है) क्या हम पास-पास खड़े हुए बुरे लगते हैं?

राधा—तुम इतने नीच हो, देवर! तुम्हारे भाई मरकर भी मुझमें जीवित हैं।

कमल—तुममें जीवित हैं तुम सच कहती हो भाभी? तुमने किस दिन अपने हृदय में उन्हें रखा? यदि रखतीं तो शायद वे मौत के मुँह में से भी लौट आते। (नीचे से तस्वीर उठाता है) तुम एक क्षण भी उनको अपने हृदय में न रख सकीं। यह तस्वीर जो तुमने अपने एकांत की साथिन बना रखी है सो क्या भैया की स्मृति-पूजा के लिए? तुम अपने हृदय के अँधेरे में जिस पाप को छिपाये बैठी हो क्या मैं उससे अधिक काला हूँ?

राधा—तुम काले नहीं हो, देवर! मैं देवी भी नहीं हूँ, कमल! संसार में बिरला ही पुरुष देवता होगा, बिरली ही नारी देवी होगी! लेकिन प्रत्येक पुरुष को भ्रमर बनना आवश्यक नहीं

और प्रत्येक नारी को वेश्या होना आवश्यक नहीं। मैं जानती हूँ, मेरे लिए मेरा रूप और यौवन अभिशाप है। मेरा भावना-विह्वल हृदय मुझे न जाने कहाँ-कहाँ उड़ा ले जाता है! फिर भी आँधी-तूफ़ान के भीतर मै नारीत्व की दीप-शिखा को बुझने न दूँगी।

कमल—मै तो समाज की निर्दय रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह करना चाहता हूँ।

राधा—मैं तुम्हें इसमें सहायता दूँगी, देवर! न जाने कितनी ग़रीब विधवाएँ वैधव्य की ज्वाला में जल रही हैं। संभवतः वहाँ तुम मुझ-जैसा रूप न पाओ, लेकिन नारी का रूप ही तो सब कुछ नहीं है। फिर किसी रूप के लोभ से समाज से विद्रोह करना सात्विक नहीं होगा। बोलो, देवर है तुममें साहस?

कमल—मैं सोचूँगा!

[सहसा राधा की सास दुर्गा का प्रवेश, कमल और राधा भय-चकित हो जाते हैं। राधा एकदम घूँघट निकाल लेती है। कमल चला जाता है।]

दुर्गा—बहू, तुममें ऐसे लक्षण भरे हैं, यह मैं नहीं जानती थी। आज सूर्योदय के पहले तुम्हारी छाया भी इस घर में न दिखायी दे। समझी!

राधा—मेरा अपराध!

दुर्गा—अपराध! कलमुँही! मेरी आँखों से जो कुछ मैंने देखा है उसके बाद मैं कुछ नहीं सुनना चाहती!

[प्रस्थान]

राधा—बिना अपराध किये ही यदि मैं अपराधिनी हूँ तो क्यों न मुझे अपराध करना चाहिए ! कमल बाबू , कमल बाबू !

[चिल्लाते हुए प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[समय रात्रि के बारह बजे का है । सब अपने घरों और घोंसलों में विश्राम कर रहे हैं । सब दूर सन्नाटा है । काशी के एक सुदूरवर्ती घाट पर राधा अकेली पहुँचती है ।]

राधा—घाट पर बैठकर वैधव्य के सूनेपन को गले लगाये जीवन-यात्रा करना उतना कठिन नहीं है, जितना कि अपयश का बोझ लादे हुए। हम यदि समाज को छोड़ना चाहते हैं तो समाज हमें नहीं छोड़ना चाहता। वह विद्रोही को पूरा-पूरा दण्ड देना आवश्यक समझता है। मेरे जीवन का घटना-चक्र कितनी जल्दी-जल्दी घूम रहा है ! वे वैधव्य की डरावनी आँखें, वह माधव की शान्ति-प्रद मूर्ति, वह कमल की प्रलोभनभरी वाणी, वह सास की क्रोधभरी चितवन, वह समाज का निर्लज्ज अट्टहास—सब आँखों के आगे नाच रहे हैं। हे गंगा मैया ! तुम्हारे शीतल प्रवाह में मुझे भी बहा ले जाओ। जिसे—(पानी में पैर रखती है) कहीं शान्ति नहीं मिली उसे तुम अपनी गोदी में लेकर शांति प्रदान करो।

[कहीं से गाने की आवाज़ आती है]

जीवन का मत बोझ उतार,

मुसाफ़िर, जीवन का मत बोझ उतार !

राधा—यह कौन गा रहा है ! बहुत ही परिचित स्वर है। मानो कोई मुझसे ही पुकार-पुकारकर कह रहा है—'जीवन का मत बोझ उतार'। संसार को जिन्होंने अनुभूति की आँखों से नहीं देखा—वे साधु-संत क्या जानें कि जीवन भी कभी इतना भारी बोझ बन जाता है कि उसे लादे हुए चलना असम्भव हो जाता है !

[गीत आगे बढ़ता है।]

अभी कली वन में मुसकायी।

अभी धूल में गिर मुरझायी।

अभी धूप, अब छाया छायी।

हँस-हँस जग के खेल निहार, मुसाफ़िर।

जीवन का मत बोझ उतार।

मुसाफिर ! जीवन का मत बोझ उतार।

जा पीते उनके दिल जलते।

जो रीते उनके दिल जलते।

जो जीते उनके दिल जलते।

जलना ही है जग का प्यार, मुसाफिर।

जीवन का मत बोझ उतार।

मुसाफ़िर जीवन का मत बोझ उतार

[राधा पानी में से बाहर आ जाती है, गीत आगे बढ़ता है ।]

तू घट एक उतार रखेगा ।
समय दूसरा फिर लादेगा ।
सदा शीश पर भार रहेगा ।
फिर क्यों फेंक रहा बेकार, मुसाफ़िर ।
जीवन का मत बोझ उतार ।
मुसाफ़िर, जीवन का मत बोझ उतार ।

जीवन तो विधि का दीपक है ।
यह जलता रहता अपलक है ।
कौन बुझा पाया अबतक है !
इसमें विधि का स्नेह अपार, मुसाफ़िर ।
जीवन का मत बोझ उतार ।
मुसाफिर, जीवन का मत बोझ उतार ।

राधा—इस गीत ने मेरे प्राणों को हिला दिया है। मानो यह मेरी अन्तरात्मा की पुकार है। तो क्या मुझे मरने का भी अधिकार नहीं है ? जब हमारे कपड़े मैले हो जाते हैं, हम दूसरे पहन लेते हैं, मैले उतार देते हैं।

[संन्यासी के वेश में माधव का प्रवेश]

माधव—लेकिन हमें नंगे होने का अधिकार तो नहीं है। हमारे दूसरे कपड़ों की अलमारी की चाबी हमारे पास नहीं है। तुम अर्धरात्रि के सूनेपन में गंगा के घाट पर क्या करने आयी हो ?

राधा—संन्यासी, तुम मेरे माधव तो नहीं हो ?

माधव—मैं माधव था, तुम्हारा भी था, किन्तु तुम्हारा न रहकर मैंने तुम्हें पा लिया है, राधा !

राधा—कब ? आज !

माधव—आज नहीं आज से बहुत पहले, जब भगवान् ने मुझे संसार के प्रत्येक प्राणी में तुम्हें देखने की आँखें दीं। यह तो बताओ तुम यहाँ कैसे आयीं ?

राधा—तुम्हारे सामने मेरा पाप या पुण्य कुछ भी छिपा नहीं रहना चाहता। आवरणहीन होकर तुम्हारे सामने आने में मुझे शान्ति मिलती है।

माधव—हमें सारे संसार के सामने आवरणहीन होकर रहना चाहिए। तभी हमें सच्ची शान्ति मिलेगी। हाँ, कहो क्या कहती थीं ?

राधा—मैं तुम्हें प्यार करती हूँ यह बात मेरे देवर कमलबाबू जान गये और एक रात जब मैं आइने के सामने खड़ी होकर अपना रूप और तुम्हारी तस्वीर देख रही थी, वे आ गये और मेरे साथ आ खड़े हुए। बोले, 'क्या हम दोनों एक साथ अच्छे नहीं लगते।' फिर उन्होंने मेरी माँग में सिंदूर भरकर कहा,'क्या तुम्हारी माँग में सिंदूर अच्छा नहीं लगता ?'

माधव—तुमने चुपचाप सिंदूर भरवा लिया !

राधा—हाँ, भरवा लिया। मैं विधवा हुई कब थी ? जबतक तुम हो मैं अपने आप को विधवा क्यों समझूँ ?

माधव—फिर क्या हुआ ?

राधा—इतने ही में सास साहिबा आ गयीं, और मुझे कलंकिनी

कहकर घर से निकल जाने का हुक्म सुनाया। कमलबाबू ऐसे भागे कि एक मास तक लौटे ही नहीं। मेरी प्रतिहिंसा ने असत्य को सत्य करना चाहा, पर विधाता ने बचा लिया। सास ने मेरी आत्मा को शान्ति पाने के लिए काशी भेज दिया। किन्तु, बाबा विश्वनाथ के मन्दिर में भी मुझे शान्ति नहीं मिली। लोग मुझे पापिनी समझते हैं, मेरी ओर आँखें उठाते हैं। मुझे सुलभ वस्तु समझकर हाथ भी बढ़ाते हैं। इसलिए आत्म-वेदना ने कहा, 'गंगा की गोद में विश्राम करो।'

माधव—राधा ! भगवान के मंदिर में शांति अवश्य मिलती है। तुमने अभी तक उसका मंदिर देखा नहीं, उसकी मूर्ति को पहचाना नहीं।

राधा—तुम दिखा सकते हो !

माधव—दिखाऊँगा राधा ! तुम्हींने तो अनजान में मुझे भगवान का मंदिर दिखाया है। यह संपूर्ण विश्व भगवान् का मंदिर है। प्रत्येक प्राणी भगवान् की मूर्ति है। उनकी सेवा करने में ही सच्ची शांति मिलती है, राधा ! मैं जबसे सेवा-मंदिर का साधक बना हूँ मेरे ओछेपन के कपड़े छिन्न-भिन्न हो गये हैं, मेरी सीमाएँ बढ़ गयी हैं। महाप्राण में मानों मैं मिल गया हूँ।

राधा—माधव मुझे भी अपने चरणों में स्थान दोगे ?

माधव—मेरे चरणों में ! मैं तुमसे दूर था ही कब ! जिस तरह मैंने तुम्हें खोजा तुम मुझे खोजतीं ! वासना के बादलों के पार यदि तुम झाँकतीं तो मैं तुम्हें सब जगह मिलता। फिर तुम देखतीं कि जो तुम हो वह मैं हूँ। मनुष्य केवल सेवा, कर्म और साधना में पूर्ण शांति पा सकता है। हमारी सूनी घड़ियाँ

हमारे चारों ओर जाल बिछाती हैं, जिसमें फँसकर हम रात दिन तड़पते हैं। भगवान की भक्ति और भजन से भी मन को शांति नहीं मिलती। वह तो तब मिलती है जब हम उसके सौंपे हुए कार्य को सम्पन्न करते हुए जीवन-पथ पर चलते हैं।

राधा—तुम मुझे उस पथ पर ले चलोगे ?

माधव—हाँ ले चलूँगा राधा ! तुम अपने सांसारिक कपड़े उतार दो। वासना को गंगा की गोद में बहा दो। मंगलमयी कल्याणी बनकर आओ।

राधा—संसार हमपर उँगली नहीं उठावेगा ?

माधव—कोई अपनी माँ पर उँगली उठाता है ? सेवा-पथ पर अग्रसर होकर तुम संसार की माँ बनोगी राधे ! यश-अपयश तुम्हारे पास नहीं आ सकेंगे। सेवा मनुष्य का स्वभाव है, शेष सब निस्सार है !

राधा—इतने ही दिनों में तुम ऐसे ज्ञानी बन गये हो !

माधव—तुमने ही मुझे आँखें दी हैं। उठो !

[हाथ पकड़कर उठाता है]

राधा—आधी रात को, इस सूने घाट पर, चाँदनी के मादक प्रकाश में, एक सुंदरी का हाथ पकड़ते हुए तुम काँपते नहीं हो माधव !

माधव—मेरे आगे न कभी दिन है, न कभी रात, न कहीं शून्य न कहीं भीड़, न कोई कुरूप है न कोई सुंदर ! सब मेरी ही आत्मा के अंश हैं। अपना ही हाथ पकड़ने में मुझे भय किस बात का !

राधा—धन्य हो, गुरुदेव ! [चरणों पर सिर रखती है]

पटाक्षेप

मातृ-मंदिर

पहला दृश्य

[स्थान-आगरा। समय-रात्रि का प्रारंभ। मिर्ज़ा अज़ीमबेग, जिनकी आयु लगभग ६० वर्ष हो चुकी है, किंतु जिनके अंगों में अभी तक दृढ़ता है, आँखों में चमक और मुख-मंडल पर रोब है, एक मसनद से टिके हुए हुक्का पी रहे हैं। कहीं से शहनाई के बजने की आवाज़ आ रही है। मिर्ज़ा साहब की १०-११ वर्ष की पोती रोशन तश्तरी में पान लेकर आती है। मिर्ज़ा साहब तश्तरी में से एक पान खाते हैं। रोशन तश्तरी एक ओर रखकर पास बैठ जाती है।]

मिर्ज़ा—बेटी, कैसी प्यारी शहनाई बज रही है!

रोशन—बाबा, हमारे मोहल्ले में किसी लड़की की शादी है।

मिर्ज़ा—शादी है! न जाने क्यों कोई भी खुशी की बात देख-सुनकर मेरा मन नाशाद हो उठता है। जिसके बुजुर्ग कभी हिंदुस्तान के बादशाह रह चुके हैं, जो दुनिया की आँखों में चकाचौंध करनेवाली ताजमहल जैसी निशानियाँ छोड़ गये हैं, जो आखिरी बार सन ५७ में बुझते हुए चिराग़ की तरह भभककर ख़तम हो गये, जिसकी नसों में उनका खून बह रहा है, वह अपने दिल से बादशाहत की शान कैसे निकाल दे? उस लाल किले पर आज किस शान और घमंड से अंग्रेज़ों का झंडा लहरा रहा है, कभी यहीं पर मुग़लों का झंडा फहराता था। जमुना की नीली-नीली लहरों में हमारी नावें तैरती थीं।

मैं तो सोते-जागते वही तस्वीर देखता रहता हूँ।

रोशन—बाबा, आज मैं नयी गुड़िया लाई हूँ।

मिर्ज़ा—वाह, बेटी, जब मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत की बात सोच रहा हूँ, तब तुझे गुड़िया का ख़याल आ रहा है। तेरी तरह अगर मैं भी सब-कुछ भूलकर खेल-कूद में, बेखबरी और नादानी में, ज़िंदगी की घड़ियाँ बिता सकता तो सभी झंझटों से छुटकारा पा जाता। हमारे हिन्दुस्तानी भाई भी तेरी तरह ही बच्चे हैं।

रोशन—क्यों बाबा?

मिर्ज़ा—इसलिए कि उन्हें न अपना गुज़रा हुआ याद है, न आने-वाले की उन्हें चिंता है। वे गुड्डे-गुड़ियों को लेकर मस्त हैं। उनको न अपनी आबरू का ख़याल है न अपनी शान का। वे कोल्हू के बैल की तरह गृहस्थी के चक्कर में घूम रहे हैं। मेरे कलेजे को तो जैसे कोई रात-दिन आठों पहर आरे से काटता रहता है।

रोशन—बाबा, आप इतनी बातें क्यों सोचते हैं?

मिर्ज़ा—न सोचूँ बेटी! भूल जाऊँ बेटी, कि यह हिन्दुस्तान हमारा है, भूल जाऊँ कि हम इंसान हैं? हमें बादशाह नहीं तो कम से कम आज़ाद इन्सान बनकर रहने का हक़ है। मैं भूलने की कोशिश करके थक गया। मुझे इसमें कामयाबी नहीं मिली। कुछ घड़ियों के लिए मैं ये बातें भूल जाता हूँ, जब तुम कोई गीत गाती हो। बेटी, वह शहनाई अभी तक बज रही है, कैसी मीठी है उसकी तान। रोशन, तू भी इस शहनाई को शर्मिन्दा कर सकती है। इधर साँझ उदासी का अँधेरा लेकर आ रही

है, उधर शहनाई खुशी का दिया जला रही है। बेटी, यही सुख-दुखभरी दुनिया है। इसमें तू भी एक मौज की लहर उठा दे। एक गीत सुना।

रोशन—कौनसा गीत गाऊँ ?

मिर्ज़ा—जो जी चाहे। कोयल किसी से पूछती है क्या गाऊँ !

रोशन—अच्छा सुनिए ! (गाती है)

आज दिल क्या गीत गाए ?

छिप गये हैं चाँद-तारे,
सो गये हैं स्वप्न सारे,
खो गये हैं सुख हमारे,

कौन उनको खोज लाए ?
आज दिल क्या गीत गाए ?

आँख से है नींद भागी,
मैं तड़प सब रात जागी,
बुझ गयी शमआ अभागी,

कौन मुझको भी बुझाए !
आज दिल क्या गीत गाए ?

हैं गुलाबों में न लाली,
है फ़लक का बाग ख़ाली,
प्यास से भरपूर प्याली,

कौन अब लब से लगाए ?
आज दिल क्या गीत गाए ?

गा चुकी कोयल तराने,
गीत मेरे भी पुराने,
दर्द से लबरेज़ गाने,

हाय, सुनने कौन आए ?
आज दिल क्या गीत गाए ?

[सहसा बाहर से आनेवाली शहनाई की ध्वनि बंद हो जाती है ।]

मिर्ज़ा—वह शहनाई की आवाज़ बंद हो गयी है। ग़म के नग़मे ने खुशी की शहनाई का गला दबा दिया है।

[सहसा बाहर प्रकाश और धुआँ होता है ।]

मिर्ज़ा—यह क्या इतना धुँआँ, इतनी रोशनी ! (खड़ा होकर बाहर देखता है ।) जैसे किसी घर में आग लग गयी हो।

[रोशन भी खड़ी होकर देखती है। बाहर 'या अली, या अली, इस्लाम जिंदाबाद' के नारे गूँजते हैं ।]

मिर्ज़ा—हैं, यह क्या गोलमाल है ! ये लोग 'या अली' के नारे लगाते हुए, हाथ में लाठियाँ और पलीते लिये हुए कहाँ जा रहे हैं !

[एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की हिंदू लड़की को लिए हुए मिर्ज़ा साहब के बलिष्ठ और सुन्दर पुत्र मुहम्मद का प्रवेश ।]

मुहम्मद—अब्बा, यहाँ हिंदू-मुस्लिम दंगा हो गया है । साथ के उस घर में जहाँ शहनाई बज रही थी, हमारे मुसलमान

भाइयों ने आग लगा दी है। घर के सभी लोगों को, इस लड़की के दूल्हे को भी क़त्ल कर दिया है।

मिर्ज़ा—लेकिन, तुम क्यों उन लोगों में शामिल हुए ? तुम इस लड़की को क्यों पकड़ लाये ?

मुहम्मद—तो क्या उन शैतानों के हाथ में छोड़ आता ! अपनी बहन की इज्जत-असमत लुटती अपनी आँखों से देखता। मैं इसे यह कहकर ले आया कि मैं इसे मुसलमान बनाऊँगा। आप इसे तसल्ली दें। मैं अभी आया। यह दंगे की आग बुरी तरह फैल रही है। मैं जाता हूँ, शायद हिन्दुओं की कुछ खिदमत कर सकूं। कैसे अंधे हैं ये लोग !

[प्रथान]

मिर्ज़ा—(हिन्दू लड़की से जिसका नाम मालती है) बैठो बेटी, तुम डर रही हो। तुम रो रही हो। तुम्हारे सर पर अभी का लगा हुआ सिंदूर भी रो रहा है। तुम्हारे हाथ की सुहाग की चूड़ियाँ भी रो रही हैं। बेटी. मेरा भी रोम-रोम रो रहा है। तुम्हारे माँ-बाप-भाई-खाविंद सभी गये ! क्यों बेटी सब...?

मालती—भगवान् मुझे भी ले लो। उन दुष्टों ने मुझे भी उसी आग में क्यों नहीं भून डाला ? इस सर्वनाश की ज्वाला में तिल-तिल जलने को क्यों छोड़ दिया ?

मिर्ज़ा—बेटी, किस्मत पर हमारा क्या ज़ोर है ? तुम्हारा जो सुख-सुहाग चला गया, वह मैं तुम्हें लौटाकर नहीं दे सकता, फिर भी, बेटी, मेरा सब कुछ तुम्हारा है। तुम्हारा धर्म और तुम्हारी इज्जत कायम रखकर मैं तुम्हारी जो ख़िदमत कर सकूँ करने को तैयार हूँ। दुनिया में दुखी से दुखी और

सब-कुछ गँवा देनेवालों के लिए भी खुदा ने कुछ काम मुकर्रर कर रखे हैं। इस दुनिया में हरेक अदना और आला बंदे में तुम्हें अपने घरवालों की झाँकी मिलेगी। बेटी, तुम अपने दिल को बड़ा करो, तुम सारी दुनिया की माँ बनो। अपनी मुहब्बत के चिराग को एक कुटी में नहीं, सूरज की तरह सारी दुनिया में रोशन करो। तुम्हारा नाम क्या है ?

मालती—मालती ! बाबा, तुम बड़े दयावान हो ! मैंने आपका नाम सुना था, आज देखा कि आपके दिल में दया का समुद्र लहरा रहा है। एक दया मुझपर भी करो।

मिर्ज़ा—क्या बेटी ?

मालती—यही कि मेरा गला घोंट दीजिए, या मुझे यहाँसे बाहर जाने दीजिए ताकि मैं भी उसी आग में जिसमें मेरी माँ जल गई है, जल जाऊँ।

मिर्ज़ा—ना बेटी, मैं इतना दयावान नहीं हूँ। मैं मुसलमान हूँ, फिर भी खुदा की बनायी हुई इस मूरत को मैं नहीं तोड़ सकता। बेटी, मैं बुत-परस्त हूँ, ज़िन्दा बुतों की इबादत करता हूँ। तुम नहीं जानती बेटी, तुम खुद खुदा हो। तुम दुनिया के दुखों को दूर करने की ताकत रखती हो। दुखों से ऊपर उठो बेटी ! ये आँधी-तूफ़ान, ये दंगे-झगड़े, कुछ घड़ियों, कुछ दिनों के हैं। उसके बाद हमें काम करना होगा। दुनिया को इन्सान बनाने का काम करना होगा।

[बाहर 'हर हर महादेव' और 'या अली' की आवाज़ आती है।]

रोशन—(खिड़की से झाँककर) लोग इधर ही आ रहे हैं। मुझे डर लगता है, बाबा !

मिर्ज़ा—यहाँ रहना खतरे से खाली नहीं। ये लोग पागल हैं, किस वक्त क्या कर गुज़रें इसका क्या पता! चलो, पिछले दरवाजे से दूसरे मुहल्ले के मकान में निकल चलें। (मालती से) चलो बेटी! तुम भी चलो।

[सबका प्रस्थान]

पट-परिवर्तन

दूसरा दृश्य

[स्थान—एक तालाब के किनारे एक बड़ का पेड। समय-संध्या। पेड़ के नीचे एक मुसलमान स्त्री कमज़ोर और थकी हुई हालत में पड़ी हुई है। उसके पास रोशन बैठी है।]

रोशन—माँ!

रोशन की माँ—बेटी! साँझ हो गयी है। सूरज डूब चला है। पंछी अपने घोंसलों की ओर लौट चले। इस दुनिया में मेरा जो घोंसला था उसे ज़ालिमों ने जला दिया, अब तो दुनिया के पार जो घोंसला है वहीं से पुकार आ रही है। अब मैं जा रही हूँ, लेकिन तुझे किसके भरोसे छोड़ जाऊँ! या अल्लाह, तू कितना ज़ालिम है!

रोशन—माँ, आगे न चलोगी?

रोशन की माँ—चलने की ताकत होती तो ज़रूर चलती। बेटी, तीन दिन से कुछ खाया नहीं है, तिसपर यह बुखार! आज ज़िंदगी की आखिरी घड़ियों में तुझसे झूठ नहीं बोलूँगी। पास में जो कुछ था उससे तुझे खिलाती रही हूँ। तू जब पूछती थी, माँ तुम न खाओगी तो कह देती थी, मैं खा चुकी हूँ।

रोशन—मेरी अच्छी माँ ! तुमने अपने ऊपर इतना जुल्म क्यों किया ? तुमने मेरा गला क्यों नहीं घोंट दिया ?

रोशन की माँ—एक माँ ऐसा कैसे कर सकती है ? सोचा था भीख माँगकर तुझे खिलाऊँगी और तेरी रखवाली रखने के लिए अपनी भी साँसें कायम रखूँगी, लेकिन जिसके बुजुर्ग कभी तख्तेताऊस पर बैठते थे, उसके घर की औरतें क्या भीख माँगने के लिए हाथ पसारें ? बेटी, मुझसे भीख नहीं माँगी गयी। हमारा आगरे का घर-बार हिंदुओं ने आग की नज़र कर दिया। तुम्हारे बाबा और अब्बा का कुछ पता नहीं लगा। वे हिंदू-मुसलमानों के दंगे की होली के ईंधन बन गये, या क्या हुआ, कुछ पता नहीं। यह भी नहीं मालूम उनमें से कोई हमें खोज रहा है या नहीं ?

[पास ही कहीं से गाने की आवाज़ आती है।]

रोशन की माँ—कितना दर्द भरा गीत है !

[नेपथ्य में गान]

कबतक भार सम्हाले जावें !

जो अपने थे बने पराये !
चले गये, फिर लौट न आये !
नभ में अपने राज जमाये !

उनतक कैसे जाने पावें !
कबतक भार सम्हाले जावें !

वे नक्षत्रों में मुसकाते,
वे फूलों में रूप दिखाते,
प्राणों में काँटे कसकाते,

उनको कैसे दर्द दिखावें !
कबतक भार सम्हाले जावें !

साँस-साँस में जलती ज्वाला,
कण-कण अंगारा कर डाला,
मरण, आज तू भर दे प्याला,

अंतिम गीत आज हम गावें !
कबतक भार सम्हाले जावें !

रोशन की माँ—सुना बेटी, वह कोई मेरी ज़िंदगी का गीत गा रही है। कोई दुखिया औरत जान पड़ती है। रोशन, देख तो यहीं कहीं पास में है। उसे बुला ला।

रोशनः—बुलाती हूँ माँ !

[रोशन का प्रस्थान]

रोशन की माँ—खुदा के खेल अजीब हैं। कुछ समझ में नहीं आता उसे ज़ालिम कहा जावे या रहीम। मुझे डर था इस सूने जंगल में रोशन को किसके सुपुर्द करके जाऊँगी ? ख़ुदा ने मानों मेरे दिलकी पुकार सुनली। जिस औरत की आवाज़ में इतना दर्द है वह मेरी बेटी को सुख चाहे न पहुँचा सके, लेकिन दग़ा तो न करेगी। (कराहती है) आह, छाती में बड़ा

दर्द है। साँस जैसे रुकी जा रही है।

[रोशन का स्त्री के साथ प्रवेश]

रोशन की माँ—आओ बहन !

स्त्री—मुझे किसलिए याद किया ?

रोशन की माँ—तुम कितना दर्दभरा गीत गाती थीं ! मैं आज अपनी जिंदगी का बोझ उतार रही हूँ, और तुम्हारे सर पर एक बोझ लादे जा रही हूँ।

स्त्री—(रोशन की माँ के पास बैठकर सरपर हाथ रखती हुई) ओह, यह गरम तवेसा तप रहा है। आँखें अंगारों सी जल रही हैं। ज्वर, भयंकर ज्वर है ! इतना रूप, यह भयानक और सुनसान जंगल। बिलकुल अकेली। यह फूल-सी भोली लड़की। भगवान, यह क्या माया है ! तेरे खेल निराले हैं। बहन, तुम कौन हो ?

रोशन की माँ—कोई नहीं एक अभागिन। अब जा रही हूँ। तुम हिंदू हो, एक मुसलमान की लड़की का बोझ अपने सर ले सकोगी ? तुम इसकी माँ बन सकोगी ?

स्त्री—(आँखों में आँसू भरकर) नारी माँ बनने से इन्कार कर सकती है ? माँ की कोई जाति नहीं होती, बहन ! माँ न हिंदू है, न मुसलमान ! वह बच्चों को प्यार करने में सुख पाती है। बच्चों को देखकर उसके आँचल के दूध में ज्वार उठ आता है। संसार के धर्म स्त्री के स्वाभाविक धर्म को बंधन में नहीं जकड़ सकते।

रोशन की माँ—तो मैं सुख से मरूँगी। (रोशन से) बेटी, पास आओ ! (रोशन पास आती है। उसकी आँखों से अविरल अश्रु-

धारा बह रही है) बेटी, आज से ये तुम्हारी माँ हैं।

[मूर्छित-सी हो जाती है।]

रोशन—(माँ की छाती से चिपटकर) माँ, माँ ! तुझे क्या हो गया, माँ ! (रोती है।)

स्त्री—हे भगवान, यह मैं क्या देख रही हूँ ! मेरी आँखों के आगे आज वह दृश्य घूम रहा है, जब मेरी बेटी का विवाह था। वह पूर्णिमा से भी ज्यादा उजली और मादक रात एक घड़ी पीछे ही अमावस्या से भी ज्यादा काली और भयानक बन गयी। उस आकस्मिक विपत्ति ने, उस भीषण हिन्दू-मुस्लिम दंगे ने सब कुछ समाप्त कर दिया। मेरी बेटी को वे लोग बल-पूर्वक उठा ले गये। घर में आग लगादी और घर के सभी लोगों को मौत के मुँह में झोंक दिया। मुझे आहत करके छोड़ गये। जब आग मेरे पास आयी मुझे सहसा होश आया। पिछले दरवाज़े से जहाँ लपटें तबतक नहीं पहुँची थीं, मैं बाहर निकली। बाहर से घर का दृश्य देखा, सिवा भयंकर लपटों के और कुछ न था। कहाँ गये बराती, कहाँ गया दूल्हा, कहाँ गयी दुल्हिन, कहाँ गया मेरा सुहाग ! उस पशुता के एक प्रहार में सब समाप्त हो गया !

रोशन—(माँ को हिलाती है।) उठो, माँ !

स्त्री—उस दिन मैंने भी उस आग में कूदकर जल जाना चाहा था, लेकिन, मेरे मनमें एक अभिलाषा बोल उठी, 'तुम्हारी बेटी ! क्या तुम उसकी सुधि न लोगी ? इस संसार के पापों में लिप्त होने को उसे छोड़ जाओगी ? क्या तुम उसे खोजोगी नहीं ?' मैं कैसे मरती ? इतने बड़े दुख के पहाड़ को उठाए हुए भी

मैं जी रही हूँ। एक मास से भिखारिन बनकर घूम रही हूँ। उसके दर्शन नहीं हुए। पर आज एक मुसलमान बहन एक और बेटी से मेरी गोद भरकर स्वर्ग को जा रही है। मैं तो स्वयं ही अपने जीवन का बोझ उतारने इस तालाब के किनारे आयी थी, लेकिन यहाँ से और बोझा बढ़ाकर जाना पड़ रहा है।

[रोशन की माँ आँखें खोलती है।]

रोशन—माँ! उठो माँ!

रोशन की माँ—(रोशन का हाथ अपने हाथ में ले लेती है।) बेटी!

स्त्री—उठो बहन, पास में मेरी कुटी है। (सहारा देकर उठाती है) शायद मैं तुम्हें अच्छा कर सकूँ।

रोशन की माँ—(सहारे से उठती हुई) अच्छा करोगी? इंसान ऐसी ही बहुत सी नामुमकिन बातें सोचता रहता है। मैं जी रही थी इसलिए कि मेरी रोशन के लिए कोई सहारा न था, अब वह मिल गया है। उसे एक माँ चाहिए थी वह मिल गयी है। अब मेरा काम ख़तम हो गया है।

स्त्री—मेरी भी बेटी खो गई है। इसीलिए भगवान ने मुझे दूसरी बेटी दे दी है। इसी तरह वह टूटे हुए दिलों को जोड़ा करता है। लुटी हुई झोलियों को भरा करता है। दुख के काले बादलों में सुख की बिजली चमकाया करता है। चलो बहन, मेरी कुटी पास है।

[सहारा देकर ले चलती है। सबका प्रस्थान]

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

[स्थान—एक गाँव में मंदिर के ढंग का एक घर। दीवार पर हिंदुस्तान का रेखा-चित्र बना हुआ है। नक्शे के बीचों बीच हाथ में तिरंगा झंडा लिए हुए स्त्री के रूप में मातृभूमि का चित्र है। घर में कुछ बालक और बालिकाएँ चर्खा कात रही हैं। मुहम्मद और मालती का प्रवेश।]

मुहम्मद—हमारा सपना एक दिन ज़रूर पूरा होगा।

मालती—भाई मुहम्मद ! हिंदुस्तान में तुम्हारे और स्वर्गीय मिर्ज़ा साहब जैसे मुसलमान कितने होंगे ?

मुहम्मद—ज्यादा तादाद में मुसलमान हम जैसे ही हैं। बहन, दिल से बहुत थोड़े लोग बुरे हैं। हमें मज़हबी तअस्सुब और जोश की शराब पिलाकर ख़ुद-गरज़ और ख़ुद-परस्त लीडर लोग शैतान बना देते हैं। मुसलमानों में ही नहीं, हिंदुओं में भी ऐसे लोगों की कमी नहीं है। हमारे हिंदू और मुसलमान भाई भूल जाते हैं कि यह देश दोनों ही कौमों की माँ है, जो भी हिंदुस्तान में रहता है उसकी माँ है। बहन, आगरा के उस दंगे में मेरे अब्बा, बीबी, बेटी, दौलत और घर-बार सब कुछ छिन गया और तुम्हारा भी कुछ बाकी न बचा। सब कुछ खोकर अगर हम एक-दूसरे की क़ौम और मज़हब को बद्दुआ न देकर मोहब्बत करना सिखा सकें, दुनिया को सच्चे मज़हब की झाँकी दिखा सकें, वतन की आन के लिए कुर्बान होने का जज़बा लोगों में भर सकें, तो मैं समझता हूँ, हमारी ख़ाना-ख़राबी और बर्बादी में से एक बहुत बड़ी भलाई पैदा हो। हमारे बुज़ुर्ग हुमायूँ शाह, अकबर, शाहजहाँ और दाराशिकोह वग़ैरा ने दोनों कौमों के दिलों को एक कर एक

मज़बूत ताक़त बनाने के लिए, एक ऐसी ताक़त बनाने के लिए जिसके आगे सारी दुनिया सर झुकावे, क्या नहीं किया? लेकिन कुछ ख़ुद-गरज़ों ने कुछ न होने दिया।

मालती—जो मुग़ल बादशाह बादशाह रहकर न कर सके वही उनका एक वंशज विभव और अधिकारविहीन होकर भी एक साधारण मनुष्य बनकर संभवतः कुछ कर सके। वही बात जब वे सम्राट होकर कहते थे तो लोग उसमें बनावट और कपट समझते थे, वही बात जब एक सर्वस्वहीन व्यक्ति कहता है तो उसमें सभी को सत्य के दर्शन होंगे। तुम्हारी भावनाओं की प्रतिध्वनि प्रत्येक भारतवासी के हृदय में गूँज उठेगी।

[बाहर की गली में मालती की माँ गाती हुई जा रही है। रोशन उसके साथ है। गाने की आवाज़ सुनाई दे रही है।]

मुहम्मद—सुनो मालती! कोई गा रहा है।

[नेपथ्य में गान]

हम विपदाओं से खेलेंगे।

आँधी हमें उड़ाने आयी,
ज्वाला हमें जलाने आयी,
बिजली हमें मिटाने आयी,

हम सब कुछ हँसकर झेलेंगे।
हम विपदाओं से खेलेंगे।

तूफ़ानों में नाव चलाते,

जाते हैं हम गाते-गाते,
भय आते हैं आँख दिखाते,
पर हम राह नहीं बदलेंगे ।
हम विपदाओं से खेलेंगे ।

विपदाओं की बिजली गिरती,
हमसे आँख जगत् की फिरती,
पथ पर घनी अँधेरी घिरती,
पर हम बढ़ते हुए चलेंगे ।
हम विपदाओं से खेलेंगे ।

मालती—यह तो माँ की आवाज़ जान पड़ती है। कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रही ! तुमने भी सुना न, भाई ! कोई गा रहा था न !

मुहम्मद—हाँ-हाँ ! मुर्दा बदन में भी जान डालनेवाली आवाज़ यह किसकी थी ! मेरा तो रोम-रोम फड़क उठा मालती !

[उसी गीत को रोशन दोहराती है। मुहम्मद और मालती ध्यान-मग्न होकर सुन रहे हैं।]

मुहम्मद—ओह, यह तो मेरी रोशन की आवाज़ जान पड़ती है ! मैं भूत और जिन्नात को नहीं मानता, लेकिन, यह क्या खेल हो रहा है ! कुछ समझ में नहीं आता। हम जाग रहे हैं या सो रहे हैं, मालती ! क्या मेरी रोशन ज़िंदा है ?

मालती—क्या मेरी माँ भी ज़िंदा है ? और क्या आज तुमको तुम्हारी बेटी, और मुझे मेरी माँ एक साथ मिल जावेंगी !

टूटे हुए फूल क्या आज फिर डाल से जुड़ेंगे ?

[गाते हुए मालती की माँ और रोशन का प्रवेश]

मालती की माँ—भिखारिन को कुछ मिलेगा ?

मालती—(माँ के पैरों में गिरकर) माँ, मुझे लेलो ! (मालती की माँ की आँखों में आँसू भर आते हैं ।)

रोशन—(मुहम्मद के पास जाकर) अब्बा !

मुहम्मद—बेटी ! (उठाकर चूम लेता है ।)

[चरखा कातनेवाले बालक खड़े होकर आश्चर्य्यचकित होकर यह दृश्य देखते हैं ।]

मालती की माँ—(मालती को उठाकर हृदय से लगा लेती है) यह कैसे हो सकता था कि तू न मिलती ? इसी दिन के लिए मैंने जीवन का इतना बोझा सहा था, नहीं तो स्वामी के साथ सती होने से सरकार का कानून भी नहीं रोक सकता था। तुम यहाँ खुश हो ?

मालती—(आलिंगन से अलग होते हुए) हाँ, माँ, मैं यहाँ खुश हूँ। उन दुष्टों के चंगुल से मैं छूट गयी थी....

मालती की माँ—यह तो मैं रोशन से जान चुकी थी। तुम्हें देखने की इच्छा थी वह भी पूरी हो चुकी। अब मैं निश्चित मन से स्वामी के पास जा सकूँगी। वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मुहम्मद—लेकिन, दुनिया को तुम्हारी जरूरत है। जो दुनिया में आता है वह खुदा की मर्जी के खिलाफ़ यहाँ से नहीं जा सकता। तुमने मेरी बेटी को मुझसे मिलाया है, मैं तुम्हारा जितना अहसान मानूँ थोड़ा है।

मालती—माँ, ये मेरे भाई हैं। जाति के मुसलमान हैं, पर उन

महापुरुषों में से हैं जो एक सच्चे मुसलमान हैं और इस लिए सच्चे हिन्दू हैं। सच बात तो यह है कि ये सच्चे मनुष्य हैं, जैसे मनुष्यों को पाकर संसार धन्य होता है। हमारी ही तरह इनका घर-बार सगे-सम्बन्धी उस दंगे की भेंट हो गये। हर तरह की कठिनाइयाँ सहकर मुझे हिन्दुओं की रीति से रहने की इन्होंने सुविधा कर दी है।

मालती की माँ—यह तो ठीक है, बेटी! जिसकी रोशन जैसी पुत्री हो उसका कैसे अविश्वास किया जा सकता है? लेकिन क्या तू अपने समाज...

मालती—नहीं माँ, जिस समाज में हम मुहम्मद जैसे व्यक्तियों को भाई नहीं बना सकतीं, उसके प्रति मेरा कोई मोह नहीं है। हम नये समाज का निर्माण करेंगे। हिन्दू सम्भवतः मुझे हिंदू के रूप में या सती के मान के साथ स्वीकार करने को तैयार न हों। फिर भी दुखों से ऊबकर प्राण देने या समाज से तिरस्कृत होकर धर्म छोड़ने के बजाय हम संघर्ष करेंगे। इधर देखो माँ, उस भारतमाता के चित्र की तरफ़। उस जन्मभूमि के चरणों में बैठकर हम जीवन भर साधना करेंगे। जन्म-भूमि कहती है, मुहम्मद मेरा बेटा है, मालती मेरी बेटी है। मेरा एक स्तन मुहम्मद के लिए है, दूसरा मालती के लिए।

मालती की माँ—तू ठीक कहती है, बेटी!

मालती—हाँ, माँ, मैं ठीक कहती हूँ। वह कहती है मेरे घर में धर्म की दीवारें नहीं हैं, छूत-छात की बाधाएँ नहीं हैं। माँ, मैं उस सीमा में पहुँचती जा रही हूँ, जहाँपर दुनिया के सम्बन्ध छूटते जाते हैं। माँ, तुम भी जन्मभूमि की बेटी हो,

और मैं भी। इस तरह हम माँ-बेटी नहीं बहन-बहन हैं। यह रोशन भी भाई मुहम्मद की बेटी नहीं, बहन है। माँ, हम सब लोगों की माँ सदियों से जंजीरों में कसी हुई है। उसे हम मुक्त करेंगे।

मालती की माँ—तू न जाने क्या-क्या बातें सीख गयी है! एक महीने से मैं भी गाँव-गाँव घूमी हूँ। मैं यह नहीं जानती कि अपने और पराये राज में क्या भेद है? लेकिन लोगों को पेट की ज्वाला के कारण एक-दूसरे का गला काटते देखकर मुझे व्यथा हुई है। यह भूख की आग भाई-भाई के गले पर....

मुहम्मद—नहीं माँ, यह भूख की आग नहीं है जो भाई-भाई के गले पर छुरी चलवाती है। भूख की आग तो हमें पास लाती है। यह भूख की आग कहाँ से आयी? माँ, यह परदेशियों की देन है। हिन्दुस्तानियों की इससे दोस्ती नहीं थी। आज हमारा सारा धन बाहर बहा जा रहा है। आज हिन्दू भी भूखा है और मुसलमान भी। आज मालती भी भिखारिन है और रोशन भी। हम सब गुलाम हैं, हम सब भूखे हैं, सब दुखी हैं। हम सब एक ही जंजीर में कसे हुए हैं।

मालती—और जिस दिन हम एक होकर खड़े हो जावेंगे उसी दिन, उसी क्षण से बंधन की कड़ियाँ टूटने लगेंगी।

मालती की माँ—तुम्हारा संकल्प सुंदर है, शुभ है, लेकिन हम सर्वस्वहीनों का बल, हम धनहीनों का धन...

मालती—माँ, बल! धन! वह महात्मा गाँधी ने हमें बता दिया है। हमारा बल और धन है चरखा। यह हमें स्वावलंबन और आत्म-विश्वास का गीत सुनाता है। हम अपना पेट इसकी सहा-

यता से भर सकते हैं। हम अपने जैसे दुखी और सर्वस्वहीनों को इस मातृ-मंदिर में लावेंगे, उन्हें चरखा रोटी देगा। यहाँ न कोई हिंदू होगा, न कोई मुसलमान। हम किसी से भीख माँगने नहीं जावेंगे। यहाँ चरखा चलता रहे, बंधन की कड़ियाँ अपने आप टूटती जावेंगी। लेकिन...

मुहम्मद—लेकिन क्या ?

मालती—हमारा कंठ दुर्बल है। ४० करोड़ भाई-बहनों तक यह आवाज़ कैसे पहुँचेगी ?

मुहम्मद—हमें काम किये जाना चाहिए ! तुम्हींने भगवान कृष्ण की गीता मुझे सुनायी है। हम फ़र्ज अदा करते रहें, अंजाम के लिए परेशान क्यों हों ! एक दिया बुझते-बुझते दूसरे को लौ देता जावे। इसी तरह हमारी माँ का मंदिर जगमगाता रहे। किसी दिन माँ की गयी शान लौटेगी। ज़रूर लौटेगी। बच्चो, आज बहुत खुशी का दिन है। आज वह गीत गाओ जो बहन मालती ने तुम्हें सिखाया था।

बच्चे—(गाते हैं)

खोलेंगे माँ की हथकड़ियाँ

बीत गयी निशि, ऊषा आयी,
मिटी कालिमा, लाली छायी,
जागी भारत की तरुणाई,

तोड़ेंगे बंधन की लड़ियाँ !
खोलेंगे माँ की हथकड़ियाँ !

सीना ताने बढ़ते जावें,
बलि-वेदी पर चढ़ते जावें,
हँसते-हँसते सहते जावें,
गोली-गोलों की फुलझड़ियाँ !
खोलेंगे माँ की हथकड़ियाँ !

विमल तिरंगा झंडा प्यारा,
जिसमें चरखा भाग्य-सितारा,
ले माँ का प्रत्येक दुलारा,
आयी निकट मुक्ति की घड़ियाँ ।
खोलेंगे माँ की हथकड़ियाँ ।

[सब मातृ-भूमि के चरणों में शीश झुकाते हैं ।]

पटाक्षेप

: ३ :

राष्ट्र-मंदिर

पहला दृश्य

[स्थान—कर्नल होम्स का बँगला। समय-दोपहर के दो बजे। कर्नल होम्स अपनी फ़ौजी पोशाक पहन रहे हैं। कमरे की छत में लगा हुआ बिजली का पंखा तीव्र गति से घूम रहा है। कालेज से लौटकर बिजली-सी गति से कर्नल होम्स की २० वर्षीय लड़की मिस होम्स कमरे में प्रवेश करती है। कुछ बेचैन-सी जान पड़ती है। बड़ी झुँझलाहट के साथ पुस्तकें अलमारी में फेंक देती है और एक आरामकुर्सी पर धम से पड़ रहती है।]

मिस होम्स—ओह, कितनी गर्मी है! मेरा तो सर चकरा गया!!

कर्नल होम्स—यही तो इस मुल्क में ख़राबी है। यहाँ की आबो-हवा आदमी की काम करने की ताक़त छीन लेती है। ऐसी गरमी में भी हमें काम करना पड़ता है। तुम तो बेटी पसीने-पसीने हो गयी हो। तुमसे कितनी बार कहा, बेटी, तुम कार में बैठकर कालेज जाया करो, लेकिन तुम पैदल ही जाती हो!

मिस होम्स—पापा, कार में बैठते हुए मुझे शर्म मालूम होती है। इस कड़ी गरमी में कितने ही आदमी सड़कों पर गिट्टी कूटते नज़र आते हैं, कितने ही ऐसे लोग मिलते हैं, जिनके बदन पर कपड़े नहीं हैं, सर पर टोप तो क्या एक टोपी भी नहीं है, कितने ही ऐसे भिखारी बच्चे मिलते हैं जो एक पैसे के लिए एक-एक फर्लाङ्ग ताँगों के पीछे दौड़ते चले जाते हैं, पापा, ऐसे लोगों के बीच में कैसे मोटर में बैठकर जाऊँ?

कर्नल होम्स—तुझपर गाँधी या लेनिन की छाया पड़ गयी है। हाँ, यह तो तूने नहीं बताया कि आज कालेज से जल्दी क्यों लौट आयी ?

मिस होम्स—कालेज के क़रीब-क़रीब सभी 'स्टूडेन्ट्स' की मर्ज़ी थी कि आज जुलूस में शामिल हुआ जावे। दस-बीस लड़कों ने कालेज में बैठना पसंद किया, बाकी चले आये। मैं भी चली आयी।

कर्नल होम्स—क्यों ?

मिस होम्स—इसलिए कि मैं अपने हिन्दुस्तानी भाइयों का दिल दुखाना नहीं चाहती थी। आप इस गरमी में फ़ौजी ड्रेस पहन-कर कहाँ जाने की तैयारी कर रहे हैं ?

कर्नल होम्स—ड्यूटी पर! आज कांग्रेस ने मिस्टर गाँधी की गिरफ़्तारी के विरोध में जो जुलूस निकालना तय किया है, कलेक्टर साहब ने उसे न निकालने का हुक्म दिया है और कांग्रेस ने हुक्म न मानने पर कमर कसी है।

मिस होम्स—तो इसमें आप क्या करेंगे ?

कर्नल होम्स—हथियारों के ज़ोर पर सरकारी हुक्म की पाबंदी कराऊँगा। अगर सरकारी हुक्मों की बेइज्जती सह ली गयी तो अंग्रेजों का राज्य यहाँ कैसे कायम रह सकता है ? अभी जुलूस निकलेगा, शाम को जलसा होगा जिसमें अंग्रेज़ी राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए लोगों को बहकाया जावेगा।

मिस होम्स—तो इसमें कानून के खिलाफ़ कौनसी बात है ? हिंदुस्तानी लोग अपना हक़ चाहते हैं। वे आज़ादी माँगते हैं।

[कर्नल साहब पूरी पोशाक पहन चुके हैं और कमरे में चहल-कदमी करने लगे हैं।]

कर्नल होम्स—हक़ चाहते हैं! आज़ादी माँगते हैं!! इस आज़ादी का मतलब क्या है? तुम जानती हो? बेटी, हम अपने नहीं, इन हिंदुस्तानियों के भले के लिए ही आये हैं। हमारा राज इस देश में अमन और कानून की हिफ़ाज़त करने के लिए है। तुमने हिस्ट्री पढ़ी है। तुम जानती हो हमारे आने के पहले यहाँ का क्या हाल था? मुसलमान, मराठे, राजपूत, ठग, पिंडारी वग़ैरः ने लड़ाई, ठगी, डकैती से मुल्क बर्बाद कर रखा था। हमने उन्हें अमन से रहना सिखाया है!

मिस होम्स—हमने उनकी ज़िंदगी छीन ली है। उन्हें डरपोक और नामर्द बना दिया है। अमन और कानून की हिफ़ाज़त के नाम पर, तहज़ीब और तालीम के बहाने उनकी नसों में मौत का पानी भर दिया है। हमने धीरे-धीरे ज़हर दे-देकर उन्हें मौत के घाट पर पहुँचाया है।

कर्नल होम्स—तुम भी ऐसा कहती हो, बेटी!

मिस होम्स—हाँ, मैं भी ऐसा कहती हूँ पापा! अंग्रेज़ों के बनाये हुए इतिहासों को पढ़कर नहीं, कालेज में जो नौजवान पढ़ते हैं, उनके चेहरों को, उनके रहन-सहन को देखकर कहती हूँ। वे विदेशी कपड़ों में, साहबी ठाट में अकड़े हुए टेसू अपने आपको मानों ख़ुदा समझते हैं, लेकिन जिन्हें अपने मुल्क की ग़ैरत नहीं, वे क्या इन्सान हैं? हमने इस देश के धंधे छीन लिये, तालीम ने लोगों की धंधे करने की आदत छुड़ा दी, वे नौकरियों के लिए दर-दर घूमने लगे, अब हम उन्हें जी चाहे जैसे नाच नचाते हैं। मुग़लों ने इस देश को सिर्फ़ फ़तह किया था, मारा नहीं था, हमने इसे फ़तह नहीं किया बल्कि मार डाला।

कर्नल होम्स—तुम्हारी बातें मैं नहीं समझ पाता बेटी !

मिस होम्स—आप फ़ौजी आदमी हैं। आपने अपने दिमाग़ को आज़ाद होकर सोचने देने की तकलीफ़ नहीं दी, लेकिन मैं जो महसूस करती हूँ साफ़-साफ़ कहती हूँ। मैं अंग्रेज़ की लड़की हूँ, उस अंग्रेज़ कौम की जिसने आज़ादी के लिए अपने बादशाह के सर को कलम कर देने में पाप नहीं माना। हमें क़द्र करनी चाहिए उन लोगों की जो अपने मुल्क को आज़ाद करना चाहते हैं, जो दुनिया में इंसान बनकर रहना चाहते हैं। हमें मुग़लों के इतिहास से कुछ सीखना चाहिए, वे यहाँ हिंदुस्तानी बनकर रहे, यहाँ की दौलत को उठाकर तुर्किस्तान नहीं ले गये, उन्होंने यहाँ के बाशिंदों को अपने बराबर दरजा दिया। वे यहाँ एक जान हो गये। पापा, क्या हम ऐसा नहीं कर सकते ? क्या हम हिंदुस्तान की ग़रीबी दूर नहीं कर सकते ?

कर्नलहोम्स-तुम्हारी तरह सभी अंग्रेज़ सोचने लगें तो कर्नलहोम्स इंग्लैंड किसी गाँव में मुर्गी पालते नज़र आवें। लंकाशायर की फैक्ट्रीज़ पर ताले पड़ जावें। लंडन के आसमान को छूनेवाले मकानात मिट्टी में मिल जावें।अपने घर को बर्बाद करके दूसरों के घर को..

मिस होम्स—आज़ाद कैसे किया जावे ? यही तो आप कहना चाहते हैं। हमें इतना लालच क्यों हो कि उसके लिए हमें ४० करोड़ लोगों को दाने-दाने के लिए मोहताज बनाना पड़े ?

कर्नल होम्स—तुम तो ठीक हिंदुस्तानियों की तरह बात करती हो !

मिस होम्स—हिंदुस्तानियों की तरह ! मैं हिंदुस्तानी नहीं तो क्या हूँ ? अंग्रेज की बेटी हूँ लेकिन मेरा जन्म हिंदुस्तान में हुआ है। यह मेरी जन्मभूमि है।

[राय साहब सीताराम का प्रवेश। सीताराम की आयु ५० से ऊपर है। आप शहर के धनी-मानी रईस हैं। हिंदू-हितों के लिए प्राण देने की निरंतर घोषणा करते रहनेवालों में हैं। सरकारी क्षेत्रों में उनका प्रवेश और विश्वास है।]

कर्नल होम्स—आइए, राय साहब सीताराम !

[दोनों हाथ मिलाते हैं, पास-पास कुर्सियों पर बैठते हैं। राय साहब रूमाल से कपाल का पसीना पोंछते हैं।]

कर्नल होम्स—कहिए शहरकी क्या हवा है ? जुलूस कैसा निकलेगा ?

राय साहब—जुलूस तो निकलेगा ? लेकिन...

कर्नल होम्स—लेकिन क्या...

राय साहब—वही जो मैं आपसे कह चुका हूँ। हम लोग अंग्रेज हुकूमत के वफ़ादार ख़ादिम हैं। ऐसी चाल चलेंगे कि कांग्रेसी जिंदगी भर जुलूस निकालने का नाम न लें। सच बात तो यह है, कर्नल साहब, कि मैं तो दिल से हिंदुस्तान में अंग्रेजी हुकूमत चाहता हूँ। जो लोग अंग्रेजी हुकूमत से छुटकारा चाहते हैं वे ख़ुदकुशी करने पर आमादा हैं। उधर रूस, इधर जापान, एक भालू एक भेड़िया। उनके आगे गाँधी की अहिंसा कैसे चलेगी ? मैं तो हिंदुस्तान की भलाई के लिए ही कांग्रेस का अन्त चाहता हूँ। अच्छा अब मैं जाता हूँ क्योंकि आप जानते ही हैं, मुझे अभी बहुत-कुछ करना है।

[सीताराम खड़े होते हैं। कर्नल होम्स भी खड़े होकर हाथ मिलाते हैं। राय साहब का प्रस्थान।]

कर्नल होम्स—देखा बेटी, इन्हीं लोगों की तुम वकालत करती हो ? इनकी आत्मा...

मिस होम्स—उसे हमने मार डाला है। हमने इनकी इन्सानियत को खुदगरज़ी के पहाड़ के नीचे दबा दिया है।

(एक ६० वर्षीय मुसलमान नेता का सफेद, लंबी डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए प्रवेश)

कर्नल होम्स—आइए, हाजी गुलाम मुहम्मद साहब!

(दोनों पास बैठते हैं)

कर्नल होम्स—अभी-अभी राय साहब सीताराम यहाँ से गये हैं।

गुलाम मुहम्मद—जी हाँ, उनसे मुलाकात हुई थी।

कर्नल होम्स—क्या मुसलमान भी जुलूस में शामिल हो रहे हैं?

गुलाम मुहम्मद—कुछ पढ़-लिखे बेवकूफ, जिन्होंने कुछ रूसी किताबें पढ़ ली हैं, या कुछ बेकार और गरीब लोग। अमीर मुसलमानों में से कोई भी कांग्रेस का साथ नहीं देगा। दें भी तो मैंने सोच रखा है कि इस बार कांग्रेस को ऐसा सबक पढ़ाया जावे कि, खुदा की कसम, लाख कोशिश करने पर भी फिर कभी मुसलमान उसके साथ न आवें।

कर्नल होम्स—शुक्रिया! अब हम लोग चलें।

(कर्नल होम्स और हाजी गुलाम मुहम्मद का प्रस्थान)

मिस होम्स—(सहसा खड़ी होकर) कैसी खतरनाक साज़िश है! हिंदू और मुसलमान अपने ही मुल्क, अपने ही नेशन के खिलाफ बेईमानी क्यों करने चले हैं? कुछ तमगों, कुछ खिताबों और बेईमानी से कमायी हुई जायदादों को कायम रखने के लिए! इन्सानियत का सबसे ऊंचा खयाल है आज़ादी, सबसे पहली ख्वाहिश है आज़ादी, सबसे प्यारी चीज़ भी है आज़ादी; उसे चंद सिक्कों की खातिर ये बेच देना चाहते हैं। मैंने भी

हिन्दुस्तान का अन्न खाया है, क्या मेरा उसके लिए कोई फर्ज नहीं। जाऊँ, शायद कुछ कर सकूँ।

[फुर्ती से प्रस्थान]

पट-परिवर्तन

दूसरा-दृश्य

[राय साहब के मकान का सामनेवाला हिस्सा। स्वयं-सेविकाओं का एक दल झंडा लिये हुए गाता हुआ बढ़ रहा है। उनका पुत्र मनोहरलाल विस्मय-विमुग्ध सा यह दृश्य देख रहा है।]

स्वयंसेविकाओं का दल:—(सम्मिलित स्वर से)

हम झंडे का मान रखेंगी !

धवल हिमालय की चोटी पर,
इसको फहरावेंगी फर-फर,
इससे भूषित होगा घर-घर,
गूँजेगा आज़ादी का स्वर;

हम प्राणों में प्राण भरेंगी।
हम झंडे का मान रखेंगी।

हमें रोकनेवाले आवें,
गोली-गोले भी बरसावें,
हम ज्वाला को गले लगावें,
हँस-हँस माँ पर प्राण चढ़ावें,

हम जननी की शान रखेंगी।
हम झंडे का मान रखेंगी।
आज़ादी के गाती गाने,
चलीं देश को आज जगाने,
आवें जननी की संतानें,
आज़ादी के बन परवानें,
मन-मन में तूफ़ान भरेंगी !
हम झंडे का मान रखेंगी।

[गाते-गाते दल का प्रस्थान]

मनोहर—कैसा प्यारा और पावन दृश्य है यह ! मेरे सोये हुए प्राण भी मानों करवट बदलने लगे हैं। आँखों के आगे भारत का गौरवमय अतीत नाचने लगा है ! कहाँ गया हमारा विश्व-व्यापी साम्राज्य ? आज हमने अपने कंधों पर गुलामी का जुआ लाद रखा है।

[मोटर-ड्राइवर का प्रवेश]

मोटर-ड्राइवर—बाबू साहब, मोटर तैयार है। रेस-कोर्स चलेंगे न ?

मनोहर—आज मैं नहीं जाऊँगा। मोटर को गेराज में छोड़ दो।

[मोटर ड्राइवर का प्रस्थान]

मनोहर—यह है हमारा जीवन ! जिस समय इस नगर के हज़ारों युवक-युवतियाँ, वृद्ध-वृद्धाएँ, बालक-बालिकाएँ राष्ट्रीय झंडे के नीचे, सरकारी आज्ञा की अवहेलना करते हुए, अपने हृदय-सम्राट महात्मा गांधी के प्रति अपना आदर और विश्वास

प्रकट करने के लिए जा रहे हैं, मुझे रेस-कोर्स जाने की सूझी थी। यही तो कारण है कि हम गुलाम हैं।

[बँगले में से खानसामा का प्रवेश]

खानसामा—चाय तैयार है।

मनोहर—जाओ, मैं आता हूँ।

[खानसामा का प्रस्थान]

मनोहर—चाय तैयार है! कैसा घृणित जीवन है हमारा! हमारे दिल में देश के लिए ज़रा सा भी दर्द नहीं है। आज मेरे पास लाखों की सम्पत्ति है। मुझे अनुभव ही नहीं होता कि देश अभाव की आग में जल रहा है! पर जब किसी स्वतंत्र देश के युवक के सामने जाता हूँ तो मेरी आँखें नीची हो जाती हैं। मैं शर्म से ज़मीन में गड़ जाना चाहता हूँ। उस समय मुझे यह धन-सम्पत्ति-ऐश्वर्य अभिशाप जान पड़ता है। इन्होंने मेरे प्राणों को बाँध लिया है, मैं आज देश के स्वर में स्वर मिलाकर आज़ादी का गीत भी नहीं गा सकता।

[मिस होम्स का प्रवेश]

मनोहर—ओहो, आप हैं, मिस होम्स! आज इधर किधर भूल पड़ीं?

मिस होम्स—अक्सर आप भूल किया करते थे, आज मैंने भूल करने की ठान ली। आज कैसी खुशी का दिन है भाई मनोहर लाल! आज आपके शहर ने इंसानियत का सुबूत दिया है। इंसानियत के कानूनों के खिलाफ़ जो हुक्म है उसको न मानना, गोली-गोलों की परवा न करके जुलूस निकालने की हिम्मत करना इस बात का सुबूत है कि हमारा देश जल्द आज़ाद होगा।

मनोहर—हमारा देश ! मिस होम्स, यह आप क्या कहती हैं ! यह आपका देश है ?

मिस होम्स—ओह, मैं अंग्रेज़ के घर पैदा हुई हूँ, क्या इसीलिए हिंदुस्तानी नहीं हूँ ? अरे भाई, जो जिस देश में रहता है वह उसी राष्ट्र का अंग है। और फिर मनोहर भाई, अंग्रेज़ होकर भी क्या मुझे हिंदुस्तानियों के ख़यालातों की इज्ज़त नहीं करनी चाहिए। मैं आपसे पूछने आयी हूँ कि आज आप क्या कर रहे हैं ? देश में जो जोश की लहर उठ रही है उसने आपके दिल को भी हिलाया या नहीं ? मेरे साथ आप कई बार टेनिस खेले हैं, सिनेमा गये हैं, नावों पर सैर की है। मैं आपके दिल को जानती हूँ।

मनोहर—क्या जानती हैं ?

मिस होम्स—यही कि उसमें भी दर्द है। गुलामी को जलाकर ख़ाक करने की ख़्वाहिश है। लेकिन यह आग अभी छोटी-सी चिनगारी है। मैं उसे फूँक मारकर जलाने आयी हूँ।

मनोहर—आप मज़ाक करती हैं !

मिस होम्स—आप मुझे दुश्मन समझते हैं मनोहर ! अपने देश का दुश्मन समझते हैं ? बदकिस्मती है मेरी कि मैं अंग्रेज़ हूँ, एक फ़ौजी अफ़सर की बेटी हूँ, लेकिन राय साहब सीताराम के लड़के मनोहरलाल में देश के लिए प्रेम हो सकता है, तो क्या कर्नल होम्स की लड़की में इंसानियत नहीं हो सकती ? मैं आयी हूँ, आपसे मदद लेने। आपके पिताजी ने जो साज़िश की है उसे नाकामयाब बनाने के लिए आप से मदद लेने !

मनोहर—मैं जानता हूँ, पिताजी को स्वार्थ ने अंधा कर दिया है।

आज के जुलूस को विफल करने के लिए वे प्रयत्न कर रहे हैं। मैं अपने प्राण देकर भी उनके प्रयत्नों को विफल करने को प्रस्तुत हूँ।

मिस होम्स—शाबास भाई मनोहरलाल ! हमें प्राणों पर खेलकर इस शहर की गलियों को हिंदू-मुसलमानों के खून से रँगे जाने से बचाना चाहिए।

[हाज़ी गुलाम मुहम्मद के पुत्र वलीमुहम्मद का प्रवेश]

मिस होम्स—आप भी आ गये वली मुहम्मद !

वलीमुहम्मद—जी हाँ, मिस होम्स ! मैं आपकी तलाश में था।

मिस होम्स—मैं आपके यहाँ आने ही वाली थी।

वलीमुहम्मद—खुशकिस्मती मेरी !

मिसहोम्स—लेकिन भाई, आपके वालिद जो मुल्क की बदकिस्मती को बढ़ाने चले हैं उसका भी कोई इलाज सोचा है आपने ? वे जो अंग्रेज़ों के हथियार बनकर मुल्क की आशाओं पर पानी फेरने चले हैं उसके लिए आप क्या करना चाहते हैं ?

वलीमुहम्मद—मुझे जो कुछ करना है मैं सोच चुका हूँ। मैं आपसे आख़िरी सलाम करने आया हूँ। मैं मस्जिद में जा रहा हूँ। मेरे वालिद साहब ने जिन लोगों को वहाँ जमा किया है मैं उनके क़दमों पर पड़कर इस्तदुआ करूँगा, खुदा के नाम पर, इस्लाम के नाम पर अर्ज़ करूँगा कि वे शैतान न बनें। मुस्लिम क़ौम पर, आज़ादी की लड़ाई के रोड़े बनने के कलंक को न लगने दें। ग़रीब मुसलमान अनपढ़ और भोले हैं। वे इन नवाबों और ख़ानबहादुरों के चक्कर में पड़कर, उनकी ग़रीबी और गुलामी को मिटाने की कोशिश करनेवाली

कांग्रेस की मुख़ालफ़त करने लगते हैं। मैं उन्हें समझा दूँगा, मिस होम्स!

मनोहर—और अगर वे नहीं माने!

वली मुहम्मद—नहीं माने तो मैं उन लोगों के सामने अपने हाथ से कलेजे में छुरी मारकर मर जाऊँगा। इससे शायद वालिद साहब की आँखें खुल जावें, शायद मुस्लिम क़ौम के बंदे अपने दिल के भीतर झाँककर सचाई को जानने लगें। मेरे मरने के बाद शायद वे समझें कि आज़ादी की भी कुछ क़ीमत है।

मिस होम्स—शाबास वली मोहम्मद! हम तीनों ही अपने वालदैन के ख़िलाफ़ बग़ावत करेंगे। चलो, यहाँ से चलें।

[तीनों का प्रस्थान]

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

[स्थान—मस्जिद के सामने का हिस्सा, कर्नल होम्स, मिस्टर सीताराम और मौलवी गुलाम मुहम्मद का बातें करते हुए प्रवेश।]

कर्नल होम्स—इस शहर में पहले कभी इतना शानदार जुलूस नहीं निकला। यह जानते हुए कि आज जेल, लाठी और मौत का भी सामना करना पड़ सकता है लोगों का समुद्र उमड़ आया है। गाँधी के नाम में ही कुछ जादू है। इससे जान पड़ता है कि अंग्रेज़ी राज्य की तरफ़ से हिंदुस्तानियों के दिल फिर चले हैं।

सीताराम—ऐसी बात नहीं है, कर्नल साहब! यह तो भूखे और बेकार लोगों का मजमा है और इनमें भी दृढ़ता नहीं है।

यह जुलूस तो बुझते हुए चिराग़ की भभक है। महात्मा गाँधी ने अपने ऊपर जो धार्मिकता का, आध्यात्मिकता का परदा डाल रखा है उसीसे कुछ लोग उनकी तरफ़ आकर्षित हुए हैं, नहीं तो अंग्रेज़ी शासन के प्रति किसी को शिकायत नहीं है। मेरी तो ऐसी ही धारणा है।

गुलाम मुहम्मद—और अभी मस्जिद में से 'या ! अली' के नारे लगने दीजिए। ये लोग ऐसे भागेंगे मानों ऊपर आसमान से बिजली गिर रही है। मानों नीचे से ज़लज़ला आ रहा है।

[पास ही से गाने की आवाज़ आती है]

हम आज़ादी के परवाने !

हमने देखा है उजियाला,
अपनी ओर बुलानेवाला,
देखा उसका हुस्न निराला,
चले आग को गले लगाने।
हम आज़ादी के परवाने।

आवें हमें मिटानेवाले ,
हमपर तोप चलानेवाले,
हम हैं जान लुटानेवाले,
आये,मर-मरकर जी जाने।
हम आज़ादी के परवाने।

कर्नल होम्स—यह तो एक नया ही जुलूस-सा जान पड़ता है। सभी तुर्की टोपी पहने हैं। वह देखो न, हाजी साहब, आपकी मस्जिद में से टिड्डियों के झुंड की तरह निकल रहे हैं। उनके हाथ में भी तिरंगा झंडा है।

गुलाम मुहम्मद—मैं खुद हैरान हूँ, कर्नल साहब! ये तो मेरे अपने आदमी हैं। किसी ने इन्हें बहकाया है। हम मुसलमानों में भी दग़ाबाज़ों की कमी नहीं है। लेकिन, कोई फ़िक्र नहीं, मैं उन्हें रास्ते पर लाता हूँ।

(प्रस्थान)

कर्नल होम्स—रास्ते पर लाता हूँ? मैं सब समझता हूँ हाजी साहब! तुम सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हो। मुझे ही धोखा देते हो! और राय साहब आपके आदमी...

सीताराम—जी, वे अभी तक आये ही नहीं!

कर्नल होम्स—आये ही नहीं! तो आपने क्या ख़ाक किया है? वैसे ही आप रायबहादुर बन जाना चाहते हैं! आपका लोगों पर असर ही क्या है?

सीताराम—उन्हें किसी ने बहका दिया है!

[कुछ सिपाही मशीनगन लेकर आते हैं और उसे सड़क के बीच में खड़ी कर देते हैं।]

कर्नल होम्स—तो फिर यह मशीनगन ही इन आज़ादी के दीवानों को होश में लावेगी। आप लोग किसी काम न आ सके। इन लोगों को गुस्ताख़ी की सज़ा अपने आप मिल जाती और

सीताराम—और सरकार बदनामी से बच जाती!

कर्नल होम्स—आप भी छींटा कसते हैं, राय साहब! हमें

सरकारी हुक्म की इज्जत रखना लाजिम है। अंग्रेजी राज की शान को हम ज़रा भी नहीं झुकने देना चाहते। सरकारी कानून को तोड़ने की जुर्रत! इसे अगर गवारा किया गया तो जल्दी ही हम लोगों को बोरिया-बँधना बाँधकर इंग्लैण्ड का रास्ता नापना पड़ेगा।

[सड़क की दूसरी तरफ़ से आवाज़ आती है—'हिंदुस्तान ज़िंदाबाद, हिंदुस्तान हो आज़ाद, महात्मा गाधी की जय !']

कर्नल होम्स—लो वह जुलूस आ गया है। (एक सिपाही से) तुम जाओ, और जुलूस के नेता को समझाओ कि अंग्रेज़ी सरकार के हुक्म तोड़ना बच्चों का खेल नहीं है। यह सड़क पर जो मशीनगन खड़ी है वह महज़ धमकी नहीं है, वह एक घड़ी में आग उगलने लगेगी। आप लोग अपनी ज़िम्मेदारी क समझें। बेगुनाह लोगों के ख़ून से इस सड़क की गिट्टियों को तर न करें।

[सिपाही का प्रस्थान और गुलाम मुहम्मद का प्रवेश]

गुलाम मुहम्मद—गजब हो गया, सरकार। 'इस घर में आग लग गयी घर के चिराग़ से।' आपकी साहबज़ादी, राय साहब के साहबज़ादे और मेरे छोकरे ने हमारे ख़िलाफ़ बग़ावत की है! हमने जो किले बनाये थे वे मिट्टी में मिल गये। हमारे सभी आदमियों को उन्होंने बहकाकर कांग्रेस के जुलूस में शामिल कर लिया है। ये तीनों जुलूस में सबसे आगे हैं। अब आप फ़ायर भी कैसे करावेंगे?

कर्नल होम्स—अंग्रेज़ ड्यूटी पर यह नहीं देखता कि उसका वार किसपर हो रहा है। उस वक्त न कोई उसका बाप है, न

भाई, न बेटा, न बेटी। वह आँखें बंद करके काम किये जाता है।

गुलाम मुहम्मद—फिर भी उन्हें समझाने की कोशिश तो करनी चाहिए।

कर्नल होम्स—ज़रूर, तुम उन्हें बुलाकर लाओ।

[कलेक्टर का प्रवेश, कर्नल तथा सिपाही से ल्यूट देते हैं।]

सीताराम—आज जैसे मेरी आँखों पर से परदा हट रहा है।

कलेक्टर—मिस्टर होम्स क्या हाल है?

कर्नल होम्स—आप देख ही रहे हैं। मेरी लड़की ने भी बग़ावत का झंडा उठाया है।

[गुलाम मुहम्मद का मिस होम्स, वली मुहम्मद, और मनोहरलाल के साथ प्रवेश]

सीताराम—कैसा सुंदर दृश्य है! इन तीनों के चेहरों पर कैसा तेज है! जिस देश में मिस होम्स-सी पुत्री, और वली मुहम्मद और मनोहर-जैसे पुत्र हों वह गुलाम कैसे रह सकता है?

कर्नल होम्स—मैं और कलेक्टर साहब भी आप तीनों बहादुरों से बहुत खुश हैं और आप से इल्तदुआ करते हैं कि आप लोग पब्लिक को समझावें कि वे जुलूस बंद करके घर लौट जावें।

मिस होम्स—हमें क्या करना चाहिए यह हम खूब जानते हैं।

मनोहर—हम महात्मा गाँधी की इज्ज़त सरकारी हुक्म से ज्यादा करते हैं और उस इज्ज़त को रखने के लिए अपने प्राणों को कीमत देने को तैयार हैं।

वली मुहम्मद—हम अपने खून के समुद्र में जुल्म की सल्तनत को डुबा देंगे।

कलेक्टर—मिस होम्स, मेरी बात भी आप नहीं मानेंगी !
मिस होम्स—मैं आपको इस वक्त नहीं जानने को मजबूर हूँ।
कर्नल होम्स—बेटी !
मिस होम्स—नहीं, कर्नल होम्स ! इस वक्त आप मेरे फ़ादर नहीं हैं। आप सरकारी मशीन के पुर्जे हैं। मैं इस अभागे देश की एक पुत्री हूँ। इस देश में मैं पैदा हुई हूँ, इसका नमक मैंने खाया है, इसके लिए मेरा जो फ़र्ज़ है वह मैं अदा कर रही हूँ। मैं इस राष्ट्र का अंग हूँ। इसके सुख-दुख मेरे सुख-दुख हैं। इसकी ज़िंदगी और मौत मेरी ज़िंदगी और मौत है।
कलेक्टर—इंग्लैण्ड तुम्हारा मुल्क नहीं, हिंदुस्तान तुम्हारा राष्ट्र है ? यह तुम क्या कहती हो मिस होम्स !
मिस होम्स—यह बात आप लोगों से नये सिरे से कहने की ज़रूरत नहीं। अमेरिका की स्वतंत्रता के युद्ध में अंग्रेज़ों ने अंग्रेज़ों के ही ख़िलाफ़ हथियार उठाकर अमेरिका को इंग्लैण्ड की गुलामी से आज़ाद किया था। देश और राष्ट्र किसे कहते हैं यह अंग्रेज़ क़ौम खूब जानती है। दुनिया का इतिहास क्या कहता है ? हिंदुस्तान का ही पुराना इतिहास देखिए। जिस तरह बाबर, अहमदशाह अब्दाली, चंगेज़खाँ, नादिरशाह वग़ैरः को हिंदुस्तान पर हमला करते वक्त यहाँ के मुसलमानों का मुकाबला सहना पड़ा था, उसी तरह आप को भी मिस होम्स की बग़ावत का मुकाबला करना पड़ेगा। इसके अलावा इंसानियत का भी तकाज़ा है कि हम इन्साफ़ करना सीखें।
कर्नल होम्स—मैं इन बातों पर सोचने की ज़रूरत नहीं समझता। मेरा

हुक्म है कि जुलूस को बन्द कर दो, नहीं तो मशीनगन अपना काम करेगी।

मिस होम्स—उसका मुंह किसने बंद किया है, कर्नल होम्स! (मशीनगन के आगे खड़ी हो जाती है। उसके पीछे वली मुहम्मद, और उसके पीछे मनोहरलाल खड़ा होता है।) लेकिन उसका पहला निशाना मुझपर, दूसरा वली मुहम्मद पर, तीसरा मनोहर पर, उसके बाद भी अगर अंग्रेज़ हुकूमत की खून की प्यास न बुझे तो बाकी भीड़ पर गोलियाँ दागिए। आज माँ के तीन लाड़ले बच्चे एक राष्ट्र-मंदिर की नींव डालेंगे। अपनी हड्डियों और खून से माँ का यह मंदिर बनावेंगे।

कर्नल होम्स—अच्छा तो फ़ाय....

कलेक्टर—ठहरो! ज़रा-सी बात के लिए इतना सख्त कदम उठाने की ज़रूरत नहीं। कर्नल होम्स, अभी जुलूस निकलने दो, बाद में बाग़ियों से कानून भुगत लेगा। ले जाओ मशीनगन!

[सिपाही मशीनगन हटा ले जाते हैं। 'इन्क़लाब ज़िंदाबाद' के नारे से आसमान गूँज उठता है। 'महात्मा गांधी की जय' के नारे लगते हैं। गाते हुए जुलूस गुज़र रहा है।]

गान

हिंदुस्तान सुखों के धाम!
तुमको सौ-सौ बार प्रणाम!
तुमको सौ-सौ बार सलाम!

मुस्लिम, आर्य, बौद्ध, ईसाई,
जैन, पारसी, सिख, सब भाई,

तुमपर सब भाई सौदाई।

तुम सबकी जननी अभिराम !
हिन्दुस्तान सुखों के धाम !

गंगा में है गान तुम्हारा,
हिमगिरि पर उत्थान तुम्हारा,
पद धोता है सागर खारा,

चढ़ा पदों पर रत्न ललाम !
हिंदुस्तान, सुखों के धाम !

अंतर कितना वैभवशाली,
बाहर भी कितनी हरियाली,
कोने-कोने में खुशहाली,

तुमपर निर्भर जग के काम !
हिंदुस्तान, सुखों के धाम !

कुछ सदियों से हम पथ भूले,
और लुटेरे आकर फूले,
लेकर विभव तुम्हारा भूले,

हम कहलाने लगे गुलाम !
हिंदुस्तान, सुखों के धाम !

माँ, संतान तुम्हारी सारे,
शीश कटाने का व्रत धारे,
बढ़ते, हमको प्राण न प्यारे,
मुक्ति बिना कैसा विश्राम ?
हिंदुस्तान, सुखों के धाम !
तुमको सौ-सौ बार प्रणाम !
तुमको सौ-सौ बार सलाम !

पटाक्षेप

: ४ :

मान-मन्दिर

पात्र-सूची

महाराणा लाखा	...	चित्तौड़ के महाराजा
राव हेमू	...	बूँदी के महाराजा
वीरसिंह	...	मेवाड़वासी एक हाड़ा से नाध्यत्त
अभयसिंह	...	मेवाड़ी सेनापति
चारणी	...	राजपूत वीरों के यश गानेवाली गायिका

पहला दृश्य

[स्थान—बूँदी-गढ़। बूँदी के राव हेमू अपने कमरे में मेवाड़ के सेनापति अभयसिंह से बात-चीत कर रहे हैं।]

अभयसिंह—राव साहब! सीसोदिया वंश हाड़ाओं को आदर और स्नेह की दृष्टि से देखता है।

रावहेमू—तो फिर आप बूंदी को मेवाड़ की आधीनता स्वीकार करने की आज्ञा लेकर क्यों आये हैं?

अभयसिंह—राव साहब, हम राजपूतों की छिन्न-भिन्न असंगठित शक्ति विदेशियों से किस प्रकार सामना कर सकती है? आप तो जानते ही हैं कि जबतक पश्चिम से आनेवाले आक्रमण-कारियों को भारत के सभी राजाओं की सम्मिलित और संग-ठित शक्ति का सामना करना पड़ा तबतक इस देश का मान नहीं घटा, लेकिन जैसे ही पृथ्वीराज और जयचंद ने देश की शक्ति को तीन-तेरह कर दिया वैसे ही इस गौरवशाली देश का

गौरव अस्त हो गया ! राव साहब, इस बात की अत्यंत आवश्यकता है कि हम अपनी शक्ति एक केन्द्र के आधीन रखें।

राव हेमू—और वह केन्द्र है चित्तौड़ !

अभयसिंह—इसमें भी कोई संदेह है, राव साहब ! यद्यपि अलाउद्दीन ने चित्तौड़ का विध्वंस कर दिया था, किंतु वह विध्वंस भी कितना गौरवमय था ! महारानी पद्मिनी का जौहर-व्रत और मेवाड़ियों का वह अभूत-पूर्व बलिदान क्या भुलाया जा सकता है ? वह वंश कितने दिन पूर्वजों के रक्त से सिंची भूमि से वंचित रहता ! उसमें महाराणा हमीर जैसे प्रतापी वीर पैदा हुए। चित्तौड़ का गत गौरव फिर लौटा है। जो राजवंश पहले मेवाड़ के अनुगत थे, महाराणा लाखा चाहते हैं आज भी उसी तरह रहें। बीच की अव्यवस्था से लाभ उठाकर जो राजा और जागीरदार मेवाड़ी झंडे के नीचे से हट गये हैं, उन्हें उसी के नीचे आना चाहिए। बूँदी राज्य भी सदा से मेवाड़ के आश्रित...

राव हेमू—बूँदी राज्य सदा से मेवाड़ के आश्रित ! यह तुम क्या कहते हो, अभयसिंह जी ! स्वर्गीय महाराजा पृथ्वीराज के वंशजों को गहलौत राजपूत अपना गुलाम बनाना चाहते हैं। अभयसिंहजी किस महाराणा ने हमारे पूर्वजों को बूँदी का पट्टा दिया था ?

अभयसिंह—पट्टा तो शायद नहीं दिया, लेकिन आप बता सकते हैं कि उन्होंने कैसे इस पठार पर अपना अधिकार जमाया है ?

राव हेमू—हमारे कुल-गौरव स्वर्गीय देवसिंह की तीखी तलवार ने इस पर्वत-माला पर बसनेवाले मीनों और भीलों को

अपने काबू में करके उनसे इस देश को छीना है। मेवाड़ के सेनापति ! मेवाड़ के पट्टे ने नहीं प्रलयंकर शंकर के अवतार देवसिंह हाड़ा के पुरुषार्थ ने हाड़ा-वंश को इस भूमि का स्वामी बनाया है। हाड़ा-वंश किसी की गुलामी स्वीकार नहीं करेगा। चाहे, वह विदेशी शक्ति हो, चाहे वह मेवाड़ का महाराणा हो।

अभयसिंह—किंतु, क्या आज तक हाड़ा राव, दशहरे और होली के उत्सवों में चित्तौड़ जाकर महाराणा के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति के फूल नहीं चढ़ाते रहे ?

राव हेमू—केवल श्रद्धा और भक्ति के फूल ही नहीं मेवाड़ की मान-रक्षा में अपने लोहू का अर्घ्य भी चढ़ाते रहे हैं, प्राणों की बलि भी देते रहे हैं।

अभयसिंह—तो आज आपको महाराणा की अधीनता स्वीकार करने में आपत्ति ही क्या है ?

राव हेमू—वह था एक वीर राजपूत का दूसरे राजपूत के प्रति स्नेह का आदान-प्रदान। मेवाड़ के सीसोदिया वंश के प्रति बूँदी के चौहानवंशीय हाड़ाओं का प्रेम-भाव अस्वाभाविक नहीं है। पृथ्वीराज के भी पहले से सीसोदिया और चौहान देश और जाति की मान-रक्षा में रक्त का संगम करते रहे हैं। दो वंशों की रक्त-धाराओं के संगम ने नीच-ऊँच की भावनाओं को नष्ट कर दिया था। आज महाराणा न जाने किस के बहकाने में आकर एक बेसुरी तान अलापने लगे हैं। सेनापति, आप समझदार हैं, महाराणा को समझाइए !

अभयसिंह—समझाऊँ तो तब, जब स्वयं समझूँ ! मैं तो यह जानता हूँ, कि राजपूतों को एक सूत्र में गूँथे जाने की बड़ी

आवश्यकता है और जो व्यक्ति यह माला तैयार करने की ताक़त रखता है, वह है महाराणा लाखा !

राव हेमू—ताक़त की बात न छेड़ो, अभयसिंह ! प्रत्येक राजपूत को अपनी ताक़त पर नाज़ है। इतने बड़े दंभ को मेवाड़ अपने प्राणों में आश्रय न दे, इसी में उसका कल्याण है। रह गयी बात एक माला में गूँथने की, सो वह माला तो बनी हुई है, यह मेवाड़ का दृष्टि-दोष है कि वह उसे देख नहीं पा रहा। हाँ, उस माला को तोड़ने का श्रीगणेश अब हो गया है।

अभयसिंह—तो मेरा यहाँ तक आना व्यर्थ हुआ ! आप महाराणा लाखा की आज्ञा को···

राव हेमू—आज्ञा ? हाड़ा आज्ञा के नाम से चिढ़ता है !

अभयसिंह—किंतु अनुशासन का अभाव हमारे देश के टुकड़े किये हुए है।

राव हेमू—प्रेम का अनुशासन मानने को हाड़ा वंश सदा तैयार है, शक्ति का नहीं। मेवाड़ के महाराणा को यदि अपने ही जाति भाइयों पर अपनी तलवार आज़माने की इच्छा हुई है तो उससे उन्हें कोई नहीं रोक सकता। बूँदी स्वतन्त्र राज्य है और स्वतन्त्र रहकर वह महाराणाओं का आदर करता रह सकता है। अधीन होकर किसी की सेवा करना वह पसन्द नहीं करता !

[नेपथ्य में गान]

कभी न अपनी आन गँवाना।

तुम हो अग्नि-पुत्र अभिमानी,

हृदय तुम्हारा है तूफ़ानी,
तुमने भय से हार न मानी,
कभी न जाना शीश झुकाना।
कभी न अपनी आन गँवाना!

पाली है प्राणों में ज्वाला,
राजपूत रण--मद--मतवाला,
कब बंधन में बँधनेवाला!
चाहे अपनी जान गँवाना।
कभी न अपनी आन गँवाना!

गौरवहीन न जीवन जीना,
चाहे पड़े गरल भी पीना,
चाहे चलनी होवे सीना,
पर न दासता को अपनाना।
कभी न अपनी आन गँवाना!

राव हेमू—सुनते हो अभयसिंह! कोई क्या गा रहा है? यह है राजपूत के जीवन का मंत्र। आप मेवाड़ियों को यह बात नये सिरे से समझानी न होगी। आप महाराणा को समझावें कि जिस धातु से मेवाड़ियों की तलवार बनी है उसी से बूँदी के हाड़ाओं की भी।

अभयसिंह—यह देश का दुर्भाग्य है कि....

[गाते-गाते चारणी का प्रवेश]

चारणी—रुक क्यों गये मेवाड़ के सेनापति ! क्या कहते हैं मैं भी तो सुनूँ !

अभयसिंह—ये राजनीतिक बातें हैं, चारणी ! तुम अपना गीत गाये जाओ, राजपूतों के हृदयों में आग लगाये जाओ, इस राजनीति के चक्कर तुम्हारी सीमा के बाहर हैं !

चारणी—राजनीति ! हःहःहः ! वह हमारी सीमा के बाहर है। वह केवल राजाओं की है। वह दिन आवेगा सेनापति, जब राजनीति का उदय साधारण जनता में से होगा। मैंने सुना था मेवाड़ के सेनापति यहाँ आये हैं, इसीलिए दर्शन करने चली आयी थी और यह जानने भी कि इस समय जब कि देश का वातावरण शांत है दो राज-शक्तियों में क्या अभिसंधि हो रही है !

राव हेमू—कुछ नहीं देवि, बड़े मगर छोटों को हज़म कर जाना चाहते हैं। चारणी, तुम जो गीत गा रही थी, उसमें राजपूत के जीवन का मूल-मन्त्र प्रतिध्वनित हो रहा था। तुम्हारे इस गीत को सार्थक करने का समय मानो आरहा है। चारणी, तुम हाड़ाओं के प्राणों की आग सुलगाओ।

चारणी—किन्तु, मेरे लिए तो हाड़ा और गहलौत दोनों बराबर हैं।

राव हेमू—फिर न्याय और अन्याय तो देखना होता है। आज मेवाड़ का बूँदी पर कोप हुआ है। राजपूत की तलवार राजपूत के ही खून की प्यासी हुई है।

चारणी—सर्वनाश ! महाकाल की जो मर्ज़ी। यह भयंकर दुर्घटना भी कल्याणकारी सिद्ध हो। [प्रस्थान]

अभयसिंह—तो मैं जाऊँ !

राव हेमू—आपकी इच्छा !

[दोनों का दो तरफ प्रस्थान]

पट-परिवर्तन

दूसरा-दृश्य

[स्थान—चित्तौड़ का राजमहल। महाराणा लाखा बहुत चिंतित और व्यथित अवस्था में कमरे में टहल रहे हैं।]

लाखा—मेवाड़ के गौरवपूर्ण इतिहास में मैंने कलंक का टीका लगाया है। यह बात नहीं कि सीसौदियावंशीय ने कभी पराजय का मुख देखा ही नहीं, लेकिन उनकी पराजय भी विजय से अधिक उज्ज्वल होती रही है। अलाउद्दीन की चित्तौड़-विजय की घटना इस बात का प्रबल प्रमाण है। किन्तु इस बार मुट्ठी भर हाड़ाओं ने हम लोगों को जिस प्रकार पराजित और विफल किया उससे मेवाड़ के आत्म-गौरव को कितनी ठेस पहुँची है, यह मेरा ही अन्तःकरण जानता है।

[अभयसिंह का प्रवेश और महाराणा को अभिवादन करना]

अभयसिंह—महाराणाजी ! दरबार के सभासद आपके दर्शन पाने को उत्सुक हैं।

महाराणा—सेनापति अभयसिंह जी ! आज मैं दरबार में नहीं जाऊँगा, आप जानते हैं कि जबसे हमें नीमेरा के मैदान में बूँदी के राव हेमू से पराजित होकर भाग आना पड़ा, मेरी आत्मा मुझे धिक्कार रही है। बाप्पा रावल और वीरवर हमीर का रक्त जिसकी धमनियों में बह रहा हो वह प्राणों के भय से रण-क्षेत्र से भाग आये यह कितने कलंक की बात है !

अभयसिंह—किन्तु, ज़रा-सी बात के लिए आप इतना अनुताप क्यों करते हैं, महाराणा ? हाड़ाओं ने रात के समय अचानक हमारे शिविर पर आक्रमण कर दिया। उस आकस्मिक धावे से घबराकर हमारे सैनिक भाग खड़े हुए। आप तो तब भी प्राणों पर खेलकर राव हेमूँ से लोहा लेना चाहते थे, किन्तु हमीं लोग आपको वहाँ से खींच लाये। इसमें आपका क्या अपराध है और इसमें मेवाड़ के गौरव में कमी आने का कौन-सा कारण है ?

महाराणा—जिनकी खाल मोटी होती है, उनके लिए किसी भी बात में कोई भी अपयश, कलंक या अपमान का कारण नहीं होता। किन्तु ! जो आन को प्राणों से बढ़कर समझते आये हैं जिनका इतिहास पुकार-पुकारकर कह रहा है कि अपमानभरे युग से आत्म-सम्मान-पूर्ण क्षण अधिक श्रेयस्कर है। जिनकी पच्चीस-पच्चीस हजार महिलाएँ देश और जाति की मान-रक्षा के लिए एक बारगी जौहर की ज्वाला में जलकर मरण को अमर कर गयी हैं, वे पराजय का मुख देखकर भी जीवित रहें यह कैसी उपहासजनक बात है । सुनो, अभयसिंह जी ! मैं अपने मस्तक से इस कलंक के टीके को धो डालना चाहता हूँ ।

अभयसिंह—मेवाड़ के सैनिक आपकी आज्ञा पर अपने प्राणों की बलि देने को प्रस्तुत हैं।

महाराणा—उनके पुरुषार्थ की परीक्षा का दिन आ पहुँचा है। मैं महारावल बाप्पा का वंशज प्रतिज्ञा करता हूँ कि जबतक बूँदी के दुर्ग में ससैन्य प्रवेश नहीं करूँगा, अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। बूँदी के दुर्ग पर जबतक मेवाड़ की पताका नहीं

फहराएगी तबतक पानी का एक बूँद भी गले के नीचे उतारना मेरे लिए गौहत्या का पाप करने के समान है।

अभयसिंह—महाराणा ! छोटे से बूँदी दुर्ग को विजय करने के लिए इतनी बड़ी प्रतिज्ञा करने की क्या आवश्यकता है ? बूँदी को उसकी धृष्टता के लिए दंड तो दिया ही जायेगा, लेकिन हाड़ा लोग कितने वीर हैं, चौहानों का इतिहास उनके प्राणों को उत्तेजित करता रहता है, युद्ध करने में यम से भी वे नहीं डरते। वे यद्यपि संख्या में कम हैं किन्तु अपने पहाड़ी प्रदेश में खूब सुरक्षित हैं। इसमें संदेह नहीं कि अन्तिम विजय हमारी होगी, किन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इसमें कितने दिन लग जायेंगे। इसलिए ऐसी भीषण प्रतिज्ञा आप न करें। सम्पूर्ण मेवाड़ आपके इशारे पर मरने-जीने के लिए प्रस्तुत है। आपके प्राणों का मूल्य उसे स्वर्ग-सिंहासन से भी अधिक है। कुबेर के धन से भी ज्यादा है। आपकी इस प्रतिज्ञा की बात सुनकर सब जगह अशान्ति के बादल छा जायेंगे और दो राजपूत वंशों में जो भयंकर वैमनस्य की ज्वाला जल उठेगी वह बुझाए न बुझेगी और उसका लाभ उठायेंगे विदेशी लोग, भारतीय सभ्यता के शत्रु। इसलिए आप से मेरा नम्र निवेदन है कि आप मेवाड़ पर दया करके, गहलोत वंश पर तरस खाकर, राजपूत जाति के हित-साधन के लिए और भारतीय स्वतंत्रता की मंगल-कामना के लिए, अपनी इस कठोर प्रतिज्ञा को वापिस लेलें।

महाराणा—आप यह क्या कहते हैं, सेनापति, क्या कभी आपने सुना है कि सूर्यवंश में पैदा होनेवाले पुरुष ने अपनी प्रतिज्ञा

को वापिस लिया है ? महाराजा दशरथ का उदाहरण हम लोगों के सामने है "प्राण जाँय, पर वचन न जाहीं" यह हमारे जीवन का मूल-मंत्र है। जो तीर तरकस से निकलकर, कमान पर चढ़कर छूट गया उसे बीच से ही नहीं लौटाया जा सकता। मेरी प्रतिज्ञा कठिनाई से पूरी होगी, यह मैं जानता हूँ और इस बात को हाल के युद्ध में पुष्टि भी हो चुकी है कि हाड़ा जाति वीरता में हम लोगों की अपेक्षा किसी प्रकार हीन नहीं है, फिर भी महाराणा लाखा की प्रतिज्ञा वास्तव में प्रतिज्ञा है वह पूर्ण होनी चाहिए।

[नेपथ्य में गान]

तोड़ मोतियों की मत माला।

ये सागर से रत्न निकाले,
युग-युग से हैं गये सम्हाले।
इनसे दुनिया में उजियाला।
तोड़ मोतियों की मत माला।

ये छाती में छेद कराकर,
एक हुए हैं हृदय मिलाकर,
इनमें व्यर्थ भेद क्यों डाला ?
तोड़ मोतियों की मत माला।

माँ का मान इसी माला से।
बच रे हृदय द्वेष-ज्वाला से।

करले पान प्रेम का प्याला।
तोड़ मोतियों की मत माला।
इनमें कोई नहीं बड़ा है।
विधि ने इनको स्वयं घड़ा है।
तू क्यों बनता है मतवाला?
तोड़ मोतियों की मत माला।

[गाते-गाते चारणी का प्रवेश]

महाराणा—तुम गा रही थीं, चारणी? तुम सम्पूर्ण राजस्थान को एकता की शृंखला में बाँधकर देश की स्वाधीनता के लिए कुछ करने का आदेश दे रही थीं, किन्तु मैं तो उस शृँखलाको तोड़ने जा रहा हूँ। दो आनवाली जातियों में जानी दुश्मनी पैदा करने जा रहा हूँ।

चारणी—यह आप क्या कहते हैं महाराणा? आपकी विवेक-शीलता पर सबको विश्वास है। जिस दिन सेनापति अभयसिंह बूँदी के राव के पास मेवाड़ की आधीनता स्वीकार करने का सँदेशा लेकर पहुँचे थे, उसी दिन मैंने उन्हें सचेत किया था। उसके बाद जब मेवाड़ी सेना पराजित होकर लौट आयी तो मैंने समझ लिया कि मेवाड़ और बूँदी दोनों ही देशों पर विपत्ति के बादल मँड़रा रहे हैं। आज भी मैं आपसे अन्तिम अनुरोध करने आयी हूँ कि महाराणा समय के फेर से यद्यपि आज हाड़ा शक्ति और साधनों में मेवाड़ के उन्नत राज्य से छोटे हैं। फिर भी वे वीर हैं! मेवाड़ को उसके विपत्ति के

दिनों में सहायता देते रहे हैं। यदि उनसे कोई धृष्टता बन पड़ी हो तो महाराणा उसे भूल जायें और राजपूत शक्तियों में स्नेह का सम्बन्ध बना रहने दें।

महाराणा—चारणी ! तुम बहुत देर से आयीं !

अभयसिंह—चारणी ! महाराणा ने प्रतिज्ञा की है कि जबतक बूँदी के गढ़ को जीत न लेंगे वह अन्न-जल ग्रहण न करेंगे।

चारणी—दुर्भाग्य ! (कुछ सोचकर) महाराणा मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। देश का कोई भी शुभचिन्तक इस विद्वेष की आग को फैलने देना पसन्द नहीं कर सकता।

अभयसिंह—किन्तु ! महाराणा की प्रतिज्ञा तो पूरी होनी ही चाहिए।

चारणी—उसका एक ही उपाय है वह यह कि यहीं पर एक मिट्टी का नकली बूँदी का दुर्ग बनाया जाये ! महाराणा उसका विध्वंस करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करलें—महाराणा क्या आप को मेरा प्रस्ताव स्वीकार है ?

महाराणा—अच्छा, अभी तो मैं नकली दुर्ग बनवाकर उसका विध्वंस करके अपने व्रत का पालन करूँगा। किन्तु हाड़ाओं को उनकी उद्दंडता का दंड दिये बिना मेरे मन को संतोष न होगा, सेनापति ! नकली दुर्ग बनवाने का प्रबन्ध करो।

[सबका प्रस्थान]

पट-परिवर्तन

तीसरा दृश्य

[चित्तौड़ के निकट एक जंगली प्रदेश में नकली दुर्ग का मुख्य दरवाजा। महाराणा लाखा और सेनापति अभयसिंह का प्रवेश।]

अभयसिंह—आपने दुर्ग का निरीक्षण कर लिया। ठीक बन गया है न?

महाराणा—क्यों न बनता! निस्सन्देह यह ठीक बूँदी-दुर्ग की हू-बहू नकल है। अच्छा अब इसपर चढ़ाई करने का खेल खेला जाये। इस मिट्टी के दुर्ग को मिट्टी में मिलाने से मेरी आत्मा को सन्तोष तो नहीं होगा, लेकिन अपमान की वेदना में, दर्प की तरङ्ग में, प्रतिहिंसा के आवेग में, जो विवेक-हीन प्रतिज्ञा मैंने कर डाली थी उससे छुटकारा तो मिल ही जायेगा उसके बाद फिर ठंडे दिमाग़ से सोचना होगा कि बूँदी को मेवाड़ की आधीनता स्वीकार करने के लिए किस तरह वाध्य किया जाये! आज तक ऐसा नहीं हुआ कि मेवाड़ के महाराणाओं की मनोकामनाएँ पूरी हुए बिना रह गयी हों।

अभयसिंह—निश्चय ही महाराज! शीघ्र ही बूँदी के पठारों पर सीसोदियों का सिंहनाद होगा। अच्छा अब हमलोग आज के रण की तैयारी करें।

महाराणा—किन्तु यह रण होगा किससे? इस दुर्ग में कोई तो हमारा पथ प्रतिरोध करनेवाला होना चाहिए।

अभयसिंह—हाँ, खेल में भी कुछ तो वास्तविकता आनी चाहिए। मैंने सोचा है दुर्ग के भीतर अपने ही कुछ सैनिक रख दिये जायेंगे जो बन्दूकों से हम लोगों पर छूँछे वार करेंगे। कुछ घन्टों ऐसा ही खेल होगा और फिर यह मिट्टी का दुर्ग मिट्टी में मिला दिया जायेगा। अच्छा अब हम चलें।

[दोनों का प्रस्थान और वीरसिंह का कुछ साथियों के साथ प्रवेश]

बीरसिंह—मेरे बहादुर साथियो, तुम देख रहे हो कि हमारे सामने यह कौनसी इमारत बनायी गयी है?

पहला साथी—हाँ, सरदार यह हमारी जन्मभूमि बूँदी का दुग है।

वीरसिंह—और तुम जानते हो कि महाराणा आज इस गढ़ को जीतकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं। किन्तु, क्या हम लोग अपनी जन्मभूमि का अपमान होने देंगे? यह हमारे वंश के मान का मन्दिर है। क्या हम इसे मिट्टी में मिलने देंगे?

दूसरा साथी—किन्तु यह तो नकली बूँदी है।

वीरसिंह—धिक्कार है तुम्हें? नकली बूँदी भी हमें प्राणों से अधिक प्रिय है। महाराणा ने सोचा होगा, यहाँ से बूँदी साठ कोस दूर है। बूँदी के राव को उनके इस अपमान का पता भी नहीं लग पायेगा। सीसोदिया सैनिक खिलौने की तरह इस मिट्टी के गढ़ को मिट्टी में मिला देंगे। किन्तु जिस जगह एक भी हाड़ा है वहाँ बूँदी का अपमान आसानी से नहीं किया जा सकता। आज महाराणा आश्चर्य के साथ देखेंगे कि यह खेल केवल खेल ही नहीं रहेगा। यहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि सीसोदियाओं और हाड़ाओं के खून से लाल हो जायेगी।

तीसरा साथी—लेकिन सरदार, हम लोग महाराणा के नौकर हैं। क्या महाराणा के विरुद्ध तलवार उठाना हमारे लिए उचित है? हमारा हाड़मांस महाराणा के नमक से बना है। हमें उनकी इच्छा में व्याघात क्यों पहुँचाना चाहिए?

वीरसिंह—और जिस जन्मभूमि की धूल में खेलकर हम बड़े हुए हैं उसका अपमान भी कैसे सहन किया जा सकता है? हम महाराणा के नौकर हैं तो क्या हमने अपनी आत्मा भी उन्हें बेच दी है? जब कभी मेवाड़ की स्वतन्त्रता पर आक्रमण हुआ है, हमारी तलवार ने उनके नमक का बदला दिया है।

और जबतक इन हाथों में तलवार पकड़ने की शक्ति रहेगी वह मेवाड़ की मान-रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहेंगे, लेकिन जब मेवाड़ और बूँदी के मान का प्रश्न आयेगा हम चुपचाप मेवाड़ की दी हुई तलवारें महाराणा के चरणों पर रखकर विदा ले लेंगे और बूँदी की ओर से अपने प्राणों की बलि देंगे। आज ऐसा ही अवसर आ पड़ा है।

पहला साथी—निश्चय ही जहाँ पर बूँदी है वहाँ पर हाड़ा है और जहाँ पर हाड़ा है वहाँ पर बूँदी है। कोई नकली बूँदी का भी अपमान नहीं कर सकता। जन्मभूमि हमें प्राणों से भी अधिक प्रिय है। हाड़ा-वंश फौलाद से बना है। आज महाराणा को इन मिट्टी की दीवारों का सामना नहीं करना पड़ेगा, बल्कि हाड़ाओं की वज्र-देह का सामना करना पड़ेगा।

वीरसिंह—निश्चय ही। हम लोग संख्या में बहुत थोड़े हैं और हमारे पास तोपों का मुकाबला करने के लिए उपयुक्त साधन भी नहीं हैं। हमारे पास केवल अपने प्राण हैं और उन प्राणों को जन्मभूमि की मान-रक्षा के लिए चढ़ा देने की अदम्य चाह है। संसार देखेगा कि हम अग्नि की सन्तानें अपने प्राणों में कितनी आग लिये हुए हैं। हम बुझते हुए दीपक की तरह भभक कर अन्धकार में मिल जायेंगे। हम बिजली की तरह कड़ककर, चमककर, आकाश का हृदय चीरते हुए पृथ्वी के अन्तस्तल में अपनी स्मृति की दरार को छोड़कर अन्तर्धान हो जायेंगे। अच्छा! अब अपनी जन्मभूमि को प्रणाम करो।

[सब दुर्ग के द्वार पर मस्तक झुकाते हैं।]

वीरसिंह—मेरे वीरो, तुम अग्नि-कुल के अंगारे हो। अपने वंश की

आभा को क्षीण न होने देना। प्रतिज्ञा करो कि प्राणों के रहते हम इस नकली दुर्ग पर मेवाड़ की राज्य-पताका को स्थापित न होने देंगे।

सबलोग—हम प्रतिज्ञा करते हैं कि प्राणों के रहते इस दुर्ग पर मेवाड़ की ध्वजा न फहराने देंगे।

वीरसिंह—मुझे आप लोगों पर अभिमान है और बूँदी आप जैसे पुत्रों को पाकर फूली नहीं समाती यह नकली बूँदी भी हमारे भावी बलिदान को कल्पना की आँखों से देखकर मुस-करा रहा है और जिस बूँदी में ऐसे मान के धनी पैदा होते हैं, उसपर संसार आशीर्वाद के फूल बरसा रहा है। चलो हम दुर्ग-रक्षा की तैयारी करें।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[स्थान— नकली बूँदी-दुर्ग का बन्द द्वार। महाराणा लाखा और अभयसिंह का प्रवेश]

महाराणा—सूर्य डूबने को आया। नकली दुर्ग के आसपास की भूमि वैसी ही लाल हो उठी है, जैसा कि आकाश का पश्चिमी छोर हो रहा है। यह कैसी लज्जा की बात है कि हमारी सेना नकली बूँदी के दुर्ग पर अपना झंडा स्थापित करने में सफ-लता प्राप्त नहीं कर सकी! वीरसिंह और इसके मुट्ठी भर साथी अभी तक वीरता पूर्वक लड़ रहे हैं।

अभयसिंह—हाँ, महाराणा, हम तो समझते थे कि घड़ी दो घड़ी में यह खेल खत्म हो जायेगा लेकिन हमें आशा के विरुद्ध छूँछे

वारों का मुकाबला करने के बजाय, हाड़ाओं के अचूक निशानों का सामना करना पड़ा। यद्यपि ये लोग गिनती में थोड़े हैं, किन्तु इन्होंने दीवारों की आड़ में उपयुक्त स्थान बनाकर हमपर गोली और तीर बरसाना प्रारम्भ कर दिया। हमारी सेना इस अयाचित, अचिंतित और आकस्मिक प्रहारों से भौचक्की हो गयी! अब दुर्ग के भीतर के हाड़ाओं की युद्ध सामग्री समाप्त हो गयी। आप की प्रतिज्ञा पूरी होने में कुछ ही क्षणों का विलम्ब है। दुर्ग की दीवारों में जहाँ-तहाँ छेद हो गये हैं और वे धराशायी होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

महाराणा—यह भी अच्छा ही हुआ कि हमारे इस खेल में भी कुछ वास्तविकता आगयी। यदि हमें बिना कुछ पराक्रम दिखाये ही दुर्ग पर अपना झंडा फहराने का अवसर मिल जाता, तो मुझे जरा भी संतोष न होता और सच पूछें तो वीरसिंह की वीरता देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं चाहता था ऐसे वीर के प्राणों की किसी प्रकार रक्षा हो सकती।

अभयसिंह—मैंने भी जब दुर्ग से अग्नि-वर्षा होते देखी तब मुझे कुछ आश्चर्य हुआ था और कुछ क्षणों के लिए सफ़ेद झंडी फहराकर युद्ध को रोक दिया था। उसके पश्चात् मैं स्वयं दुर्ग में गया और वीरसिंह की उसके साहस के लिए प्रशंसा की। साथ ही उससे अनुरोध किया कि तुम इस व्यर्थ प्रयास में अपने प्राण न खोओ। तुम महाराणा के नौकर हो तुम्हें उनके विरुद्ध हथियार न उठाना चाहिए। किन्तु उसने उत्तर दिया कि महाराणा ने हाड़ाओं को चुनौती दी है। हम उस चुनौती का उत्तर देने को मजबूर हैं। या तो जन्मभूमि और कुल के

मान की रक्षा में प्राणों की बलि हमें दे देनी होगी, या महाराणा को इस विवेकहीन प्रतिज्ञा से विमुख होना पड़ेगा। अब तीसरा कोई रास्ता नहीं, महाराणा यदि हमारे प्राण लेना चाहते हैं तो खुशी से लेलें। लेकिन हम इतने कायर, निर्लज्ज और निष्प्राण नहीं हैं कि अपनी आँखों से बूँदी का अपमान होते हुए देखें। मेवाड़ में जबतक एक भी हाड़ा है, नकली बूँदी पर भी बूँदी की ही पताका फहरायेगी।

महाराणा—निश्चय ही इन वीरों का जन्मभूमि के प्रति आदर-भाव सराहनीय है। यह मैं जानता हूँ कि इन लोगों के प्राणों की रक्षा करने का कोई उपाय नहीं। इतने बहुमूल्य प्राण लेकर भी मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी पड़ेगी। वह देखो दुर्ग की उस दरार में खड़ा हुआ वीरसिंह कितनी फुर्ती से बाण-वर्षा कर रहा है। अकेला ही हमारे सैकड़ों सैनिकों की टोली को आगे बढ़ने से रोके हुए है! धन्य हैं ऐसे वीर! धन्य है वह माँ जिसने ऐसे वीर पुत्र को जन्म दिया। धन्य है यह भूमि जहाँपर ऐसे सिंह पैदा होते हैं।

[नेपथ्य में गान]

वह देखो नभ मुसकाता है।

चले गये माँ के दीवाने,
स्वर्ग-लोक में राज्य जमाने,
जग गाता है उसके गाने—
जो निज शीश चढ़ाता है,

वह देखो नभ मुसकाता है।

जिसकी तलवारों का पानी—
लिखता है उन्मत्त कहानी,
उसकी होती अमर जवानी—
जो माँ पर मिटजाता है।
वह देखो नभ मुसकाता है।

चले गये जिनको था जाना,
लगा हुआ है आना-जाना,
पर जाना भी अमर बनाना,
बिरला ही सिखलाता है,
वह देखो नभ मुसकाता है।

[जोर का धमाका और प्रकाश होता है।]

महाराणा—वह देखो अभयसिंह, गोले के वार से वीरसिंह के प्राण-पखेरू उड़ गए। बूँदी के मतवाले सिपाही सदा के लिए सो गये। अब हम विजय-श्री प्राप्त कर सके। जाओ दुर्ग पर मेवाड़ की पताका फहराओ और वीरसिंह के शव को आदर के साथ यहाँ पहुँचाओ।

[अभयसिंह का प्रस्थान]

महाराणा—आज इस विजय में मेरी सबसे बड़ी पराजय छिपी हुई है, व्यर्थ के दम्भ ने आज कितने ही निर्दोष प्राणों की बलि ले ली।

[गाते-गाते चारणी का प्रवेश]

चारणी—देखो वह नभ मुसकाता है।

महाराणा! अब तो आपकी आत्मा को शान्ति मिल गयी होगी। अब तो आपने अपने सर से कलंक का टीका धोलिया। वह देखो बूँदी के दुर्ग पर मेवाड़ के सेनापति विजय-पताका फहरा रहे हैं। वह सुनिए मेवाड़ की सेना में विजय-दुंदुभी बज रही है।

महाराणा—चारणी! क्यों इस पश्चात्ताप से विकल प्राणों को तुम और दुखी करती हो। न जाने किस बुरी साइत में मैंने बूँदी को अपने आधीन करने का निश्चय किया था और अपने उस निश्चय को वहीं क्यों न समाप्त कर दिया जहाँपर कि मेवाड़ी सेना बूँदी की सेना से पराजित होकर वापस लौट आयी थी। वीरसिंह की वीरता ने मेरे हृदय के द्वार खोल दिये हैं मेरी आँखों का पर्दा हटा दिया है। मैं देखता हूँ ऐसी वीर जाति को आधीन करने की अभिलाषा करना पागलपन है। वैसा ही पागलपन जैसा कि अलाउद्दीन खिलजी की मेवाड़ियों को अपना गुलाम बनाने की लालसा में था।

चारणी—तो क्या महाराणा इस नकली दुर्ग की आश्चर्यजनक अभूतपूर्व स्वर्ण-घटना के बाद भी मेवाड़ और बूँदी के हृदय-मिलाने का कोई रास्ता नहीं निकल सकता?

[वीरसिंह के शव के साथ अभयसिंह का प्रवेश
शव को रखकर सब उठानेवाले चले जाते हैं।]

महाराणा—चारणी? इस शहीद के चरणों के पास बैठकर (शव के पास बैठते हैं) मैं अपने अपराध के लिए क्षमा माँगता

हू, किन्तु क्या बूंदी के राव तथा हाड़ा वंश का प्रत्येक राजपूत आज की इस दुर्घटना को भूल सकेगा ?

[राव हेमूँ का प्रवेश]

राव हेमूँ—क्यों नहीं महाराणा ? हम युग-युग से एक हैं और एक रहेंगे। आपको यह जानने की आवश्यकता थी कि राजपूतों में न कोई राजा है, न कोई महाराजा है। सब देश जाति और वंश की मान-रक्षा के लिए प्राण देनेवाले सिपाही हैं। हमारी तलवार अपने ही स्वजनों पर न उठनी चाहिए। बूँदी के हाड़ा सुख और दुःख में सदा से चित्तौड़ के सीसोदियाओं के साथ रहे हैं और रहेंगे। हम सब राजपूत अग्नि के पुत्र हैं, हम सबके हृदय में एक ही ज्वाला जल रही है। हम कैसे एक-दूसरे से पृथक् हो सकते हैं ! वीरसिंह के बलिदान ने हमें जन्मभूमि का मान करना सिखाया है।

महाराणा—निश्चय ही महाराज ! हम सम्पूर्ण राजपूत जाति की ओर से इस अमर आत्मा के आगे अपना मस्तक झुकायें।

[सब बैठकर वीरसिंह के शव के आगे झुकते हैं।]

पटाक्षेप

: ५ :

न्याय-मंदिर

पहला दृश्य

[स्थान—जंगल में एक कुटी। भील-कुमारी श्यामा और मेवाड़ के युवराज अजयसिंह खड़े हुए बातें कर रहे हैं। प्रभात का झुटपुटा हो गया है, दीपक बुझने के लिए किसी फूँक की प्रतीक्षा कर रहा है।]

कुमार—श्यामा, अब मुझे जाना ही होगा। समाज के नियम निर्दय हैं। दो मिलनोत्सुक हृदयों को सूर्य के प्रकाश में मिलने की आज्ञा वह नहीं देता। देखो, आकाश लाल हो चला है, पक्षी चहक उठे हैं। आकाश में वह जो लाल गोला-सा उदय होरहा है वह मुझसे कह रहा है, जाओ, कर्म-पथ तुम्हारी बाट जोह रहा है।

श्यामा—मैं जंगली हरिणी हूँ। नगरों से और महान् व्यक्तियों के समाज से मेरी जान-पहचान नहीं है। लेकिन, मेरा भी अपना अस्तित्त्व और व्यक्तित्व है। मेरे भी माँ-बाप हैं, पड़ौसी हैं, जातिभाई हैं, और सहेलियाँ हैं और उन सभी ने मेरे सामने मर्यादा की कुछ रेखाएँ खींच रखी हैं। आप मेवाड़ के युवराज हैं, और मैं एक भील की कन्या, फिर भी आत्म-गौरव को ऐश्वर्य और शक्ति की तराजू पर नहीं तोला जा सकता।

कुमार—तुम्हारा मतलब!

श्यामा—मतलब यही कि भील-समाज अपनी मर्यादा को किसी प्रकार राजपूतों के उच्चतम वंश के आगे झुकाने को प्रस्तुत

नहीं। वह आपकी मुझपर कृपा की कोर देखकर तलवार से मेरा सिर उतारने को उतावला होगा।

कुमार—इसका उपाय ?

श्यामा—उपाय यही है कि यदि पर्वत-मालाएँ इस सरिता को निर्वासन दें तो आप मुझे समुद्र की लहरों सी भुजाओं में स्थान दें। आप अपना प्रेम का अंचल फैलाएँ, तो संसार जिसे समाज कहता है उस वृक्ष से झड़कर मुसकराती हुई, उसमें आ कूदूँगी। लेकिन यह अन्धकार का आवरण डालकर अपनी मनोभिलाषा काली नहीं करूँगी।

कुमार—तुम क्या चाहती हो ?

श्यामा—वही जो मुझे चाहना चाहिए। आज रात आप मेरे एकांत के अतिथि रहे हैं यह बात संसार से छिपी न रहेगी और वह इस बात पर विश्वास भी नहीं करेगा कि मधुप फूल के पास जाकर भी रस से वञ्चित रहा है। मैं कहती हूँ अपनी लालसा को अँधेरी गुफा में रखकर चोर न बनाओ, प्रकाश में लाकर विद्रोही भले बनाओ। हमें समाज की जंज़ीरें तोड़नी चाहिएँ। बोलो कुमार, क्या आप मेरा हाथ उसी तरह पकड़ सकते हैं, जिस तरह राजपूत-कन्या का ?

कुमार—श्यामा ! तुम भीलराज की कन्या हो। तुम्हारे पिता ने तुम्हें शिक्षा की आँखें भी दी हैं। सुंदर संस्कारों से भी विभूषित किया है। भगवान् ने तुम्हें बनाते समय अपने हृदय का सम्पूर्ण रस और स्नेह ढाला है। तुम महातेज की एक किरण हो–विद्युत की रेखा हो–जाति-पाँति के बादल तुम्हारे तेज को छिपा नहीं सकते, उलटे तुम्हारे तेज से प्रकाशित हो उठे

हैं। यदि मैं तुम्हें अपने जीवन में साथ रख सकूँ तो इससे बड़ी सुख की बात मुझे क्या हो सकती है, किन्तु...

श्यामा—किंतु क्या ?

कुमार—किंतु, मैं हूँ मेवाड़ का युवराज ! मुझपर मेरा विशेष अधिकार नहीं है। आज की रात भी मैंने चुराकर ही तुम्हें दी है और उसका दण्ड मुझे क्या भोगना पड़ेगा, यह भगवान ही जाने। मेरा जीवन प्रजा की धरोहर है, उसकी इच्छा के विरुद्ध मैं कुछ भी नहीं कर सकता। मैं यह भी जानता हूँ कि समाज के शांत जीवन में भयंकर कोहराम पैदा किये बिना हम अपनी इच्छाओं के फल नहीं खा सकते।

श्यामा—तो,कुमार,क्या चिरकाल के लिए काल-रात्रि से भी अधिक काला अंधकार कर देने के लिए ही आपने मेरी कुटीमें स्नेहका दीपक जलाया था? जो कुटी आपकी प्रेम भरी साँसों से अनुप्राणित हो चुकी है, उसमें जीवन भर प्रलय की आँधी चलती रहेगी ? जिन आँखों ने आपको देखा है,वे निरंतर जलती ही रहेंगी ? आँसुओं का महासमुद्र भी उन्हें बुझा न सकेगा, उनकी ज्योति बुझ जायेगी लेकिन जलन नहीं बुझेगी।

कुमार—श्यामा ! तुम मुझसे जो कहोगी मैं वही करूँगा, किंतु मुझे तुम्हारे विवेक पर विश्वास है।

श्यामा—कुमार, मैं भीख नहीं माँगती और भीख नहीं माँगूँगी। मैं समझती हूँ, जिसे हृदय चाहता है उसे प्यार करने का मुझे अधिकार है और उस अधिकार से मुझे समाज का न्याय-दण्ड भी वंचित नहीं कर सकता।

[नेपथ्य में तुरही की आवाज़]

कुमार—सुनती हो श्यामा ! हमारे सैनिक-शिविर में रण की तुरही बज रही है। तुममें कितना नशा है, श्यामा, मैं भूल ही गया था कि मुझे आज रण-यात्रा पर जाना है। तुम्हें सामने पाकर मैं अपने जीवन का आदि-अंत भी भूल जाता हूँ, किंतु संसार का कटु सत्य तुरंत ही तुरही बजाने लगता है। मुझे प्रेम-मदिरा का प्याला फेंककर कर्म की तलवार हाथ में लेनी पड़ती है।

श्यामा—किंतु, हिंसा ही तो जीवन की चरम साधना नहीं है।

कुमार—जिनके हाथ में राजदंड है, वे हिंसा का उत्तर हिंसा से देने को मजबूर हैं। मैं कितना सोचता हूँ कि मैं राजकुमार न होता, एक ग़रीब किसान होता तो मेरा उत्तरदायित्व कितना हलका रहता। मैं अपने आपको तुम्हारे चरणों पर डालकर जीवन को सफल समझता। लेकिन अब मैं हूँ मेवाड़ का राज-कुमार। मेरे ऊपर देश और जाति की मान-रक्षा का बोझ आठों पहर लदा रहता है। फिर मेवाड़ ! उसपर तो लालची आँखें, उसके उन्नत मस्तक को झुकाने की स्पर्धा लेकर टक-टकी लगाये रहती हैं। मालवे के सूबेदार ने फिर मेवाड़ पर आक्रमण किया है। हमें आज उससे लोहा लेना है। तुम सुन चुकी हो कि तुरही सैनिकों को बुला रही है, लेकिन मुझे तो तुमने छीन लिया है।

[नेपथ्य में गान]

सैनिक, देख गगन की लाली !

निद्रा की अब छोड़ खुमारी,
पटक प्रेम की प्याली प्यारी,
पकड़ हाथ में तेज़ दुधारी,

तुझे पुकार रही है काली !
सैनिक, देख गगन की लाली !

मृदु फूलों की सेज जलादे,
गलबाँही का हार हटादे,
चढ़ घोड़े पर, एड़ लगादे,
रच मुंडों की माला, माली !
सैनिक, देख गगन की लाली !

जब नभ में उजियाला छाया,
क्यों कुटिया में दीप जलाया,
रवि ने तुझको मार्ग दिखाया,
तेरे पथ पर रोली डाली !
सैनिक, देख गगन की लाली !

कुमार—सुन रही हो, श्यामा ! बाहर चारणी गा रही है। मुझे उसका आदेश मानना ही पड़ेगा। आशा है तुम मुझे रण-यात्रा पर उसी तरह मुसकराती हुई उल्लसित हृदय से बिदा दोगी, जिस तरह राजपूतनियाँ देती हैं।

[गाते-गाते चारणी का प्रवेश]

श्यामा—तुम आ गयीं, चारणी ! तुम्हारा बस चले तो रक्त के महासमुद्र में सारे संसार को डुबादो, जिसमें केवल तुम्हारा त्रिशूल झंडे की तरह खड़ा दिखाई दे।

चारणी—श्यामा ! तुम मेरे लिए अपरिचित नहीं हो। तुम्हें जितना मैं जानती हूँ उतना शायद कुमार भी नहीं जानते। तुम इस बात से अनभिज्ञ नहीं हो कि लाल समुद्र में प्रेम का श्वेत

कमल बहुत सुंदर दिखाई देता है। शक्ति और स्नेह, इन्हीं तानों-बानों से सृष्टि के पट का निर्माण हुआ है। तुम्हारे अरमानों को संसार का आशीर्वाद मिलेगा या नहीं यह मैं नहीं जानती किंतु इस चारणी का अनुमोदन अवश्य मिलता रहेगा। मैं कुमार की आँखों में प्रेम का पानी और युद्ध की ज्वाला दोनों देखना चाहती हूँ! कुमार, तुम्हें रण-यात्रा पर प्रस्थान करने का समय याद है न! तुम वह घड़ी चूक गये हो!

कुमार—मुझे तुरंत पहुँचना चाहिए। विलंब के लिए पिताजी से क्षमा माँग लूँगा।

[सबका प्रस्थान]

पट-परिवर्तन

दूसरा-दृश्य

[स्थान—महाराणा रत्नसिंह का सैनिक-शिविर । महाराणा सैनिक-वेश में घूम रहे हैं।]

महाराणा—कितनी पीढ़ियों से मेवाड़ और मालवा का संघर्ष चला आ रहा है। स्वर्गीय पिता श्री महाराणा सांगा ने न केवल मालवा बल्कि गुजरात के बादशाह को भी मेवाड़ के झंडे के आगे सर झुकाने के लिए मजबूर किया था। ऐसी कौनसी शक्ति थी जो मेवाड़ के आगे दर्प-पूर्ण दृष्टि से देख सकती? बयाना के युद्ध में एक राजपूत राजा के विश्वास-घात से स्वर्गीय पिताजी को जो पराजित होना पड़ा, उससे दूसरे राज्यों को हमारी शक्ति पर अविश्वास करने का अवसर मिला। इसीलिए आज मालवा के सूबेदार ने चित्तौड़ की तरफ़ लालच भरी आँखों से देखा है, किंतु, वह जान लेगा कि महाराणा

संग्राम के पुत्र की तलवार उनसे कम तेज और कठोर नहीं है।

[मेवाड़ के सेनापति का प्रवेश]

सेनापति—(अभिवादन करके) सेना तैयार हो चुकी है।

महाराणा—तो फिर कूच का डंका क्यों नहीं बजा ?

सेनापति—युवराज की प्रतीक्षा है। सेना के अग्रभाग का संचालन उन्हें सौंपा गया है किन्तु वे अभीतक उपस्थित नहीं हुए।

महाराणा—बाप्पा रावल के वंशजों में आजतक ऐसा कोई कपूत पैदा नहीं हुआ जो रण-यात्रा पर जाने के समय देर से आया हो। कहीं कुमार शिकार को जाते समय शत्रुओं के घेरे में तो नहीं पड़ गये ?

सेनापति—आशंका तो मुझे यही हुई थी। रात को आवश्यक परामर्श के लिए जब मैं उनके शिविर में गया तो उसे ख़ाली पाया। मेरा हृदय धड़का ! मैंने तुरंत ही गुप्तचरों को भेजकर उनका पता लगवाया।

महाराणा—तो क्या वह रात भर शिविर से गायब रहे ? यह तो सैनिक-नियमों के विरुद्ध है सेनापति। मुझे विश्वास है कि राजकुमार जान-बूझकर सैनिक-नियमों की अवहेलना नहीं करेंगे। मेरा हृदय धड़कता है सेनापति ! वह अवश्य ही किसी विपत्ति में फँस गये हैं।

सेनापति—नहीं महाराणा ! वे किसी विपत्ति में नहीं फँसे। केवल थोड़ा सा रास्ता भूल गये हैं।

महाराणा—इसका मतलब ?

सेनापति—मतलब यही कि रणचंडी की उपासना के समय वे वासना के विलास-मंदिर में दिल बहलाने गये हैं।

महाराणा—यह तुम क्या कहते हो ? सेनापति ! सीसोदिया वंश के किसी लाल के प्रति ऐसा लांछन लगाते समय तुम्हें डर नहीं लगा। यदि यह लांछन असत्य सिद्ध हुआ तो जानते हो इसका क्या दंड दिया जायेगा ?

सेनापति—महाराणा ! मेवाड़ का सेनापति भारत-गौरव सीसोदिया वंश की प्रतिष्ठा, शक्ति, यश, और साहस की पूरी इज्जत रखकर ही कोई शब्द अपने मुँह से निकालता है। यदि मेरा कथन झूठा हो तो मुझे प्राण-दंड दिया जाये। जिस सौंदर्य-मूर्ति की आराधना में कुमार ने गत रात व्यतीत की है उसे मैंने पकड़वाकर अभी बुलाया है। आप जान लेंगे कि मैं सत्य कहता हूँ या असत्य।

महाराणा—तुमको भ्रम हुआ होगा, सेनापति ! यदि यह बात सत्य हुई तो महाराणा संग्रामसिंह के पुत्र रत्नसिंह का न्याय-दंड अपने इकलौते बेटे, मेवाड़ के भावी महाराणा के ऊपर भी उसी निर्ममता से प्रहार करेगा, जिससे कि साधारण जन पर करता है।

[राजकुमार का प्रवेश]

सेनापति—लीजिए, वे राजकुमार आ गये। आप इनसे पूछ सकते हैं कि रातमें कहाँ रहे और इस समय विलंब से क्यों आये ?

महाराणा—कहो कुमार, तुम्हारे पास इस बात का क्या उत्तर है ?

[कुमार चुप रहते हैं।]

सेनापति—महाराणा ! इसका उत्तर कुमार अपने मुँह से देने में शायद लज्जा का अनुभव कर रहे हैं। मैं इस प्रश्न का जीवित उत्तर सामने उपस्थित करता हूँ। (जोर से कहता है) गम्भीरसिंह !

[श्यामा के साथ गम्भीरसिंह का प्रवेश]

राजकुमार—सेनापति, तुम्हारा इतना साहस ! एक स्वतन्त्र नागरिक को इस प्रकार पकड़वाकर बुलाने की जुरअत !

महाराणा—और कुमार रण-यात्रा के समय रमणी के रूपजाल में फँसे रहने की बुद्धि तुम्हें किसने दी ! तुम्हारा क्या नाम है, बेटी !

श्यामा—मुझे श्यामा नाम से पुकारा जाता है।

महाराणा—वह कौनसा कुल है जिसकी रूपवती पुत्री ने सीसोदिया कुल के एक नक्षत्र को अपनी छवि-मेघ-माला से संसार की आँखों से ओझल करने का प्रयत्न किया। तुम राजपूतनी हो!

[चारणी का प्रवेश]

चारणी—नहीं महाराणा ! यह भीलराज की कन्या श्यामा है।

सेनापति—तो श्यामा का अपराध अक्षम्य है। एक हीन कुल की कन्या का इतना साहस !

महाराणा—अवश्य, आज राजकुमार और श्यामा का भाग्य एक ही स्याही से लिखा जायेगा।

राजकुमार—पिताजी ! जहाँ तक मेरी आत्मा कहती है इस कुमारी ने कोई अपराध नहीं किया और मैंने भी इतना ही अपराध किया है कि नियत समय से कुछ देर में मैं यहाँ पहुँच पाया हूँ। उसके लिए आप जो दंड देंगे वह स्वीकार करने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ।

महाराणा—कुमार, महाराणा तो अपनी प्रजा का आज्ञापालक सेवक है। आज प्रजा तुम दोनों को अपराधी मानती है। और मेरा न्याय-दंड कहता है कि तुम दोनों प्राणदंड के भागी हो।

श्यामा—महाराणा ! मैं राजा के न्यायदंड को नहीं जानती, मैं जाति और वंश की मर्यादाओं से भी अधिक परिचित नहीं, मैं वन में खेली और बड़ी हुई हूँ। बन में जो फूल मुझे अच्छा लगा है, उसे मैंने तोड़ लिया है। कभी महाराणा का न्याय दण्ड मेरे मार्ग में बाधक नहीं हुआ।

महाराणा—तुम क्या कहती हो, श्यामा ?

चारणी—महाराणा, अभी तक चारण और चारणी वीर पुरुषों के गुण गाने और सैनिकों को मरने-मारने के लिए उत्तेजित करने को ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते रहे हैं। किन्तु हमारे भी हृदय है और मनुष्य के हृदय को समझने का थोड़ा-सा ज्ञान हमें मिला है। इसमें सन्देह नहीं कि श्यामा से भी भूल हुई है और राजकुमार से भी, किन्तु भूल क्या हुई है इस विषय में संसार को भ्रम न रहे ऐसा उपाय होना चाहिए। सेनापति ! आप बता सकते हैं कि श्यामा से क्या भूल हुई है और राजकुमार ने क्या अपराध किया है ?

सेनापति—श्यामा से यह भूल हुई है कि उसने हीन कुल में जन्म लेकर भी राजपूतों के उच्चतम वंश के साथ स्नेह-सूत्र बाँधने का प्रयत्न किया है। और राजकुमार से यह अपराध हुआ है कि उन्होंने अपने कुल के गौरव और उच्चता को एक हीन कुल की युवती के चरणों पर चढ़ा दिया।

चारणी—यही तो भ्रम है। आप भूलते हैं सेनापति और महाराणा आप अपराधी को दण्ड देने तो चले हैं, लेकिन आपको यह पता नहीं है कि इनका वास्तविक अपराध क्या है। न्याय-आसन पर बैठते समय आप न महाराणा हैं, न आपका किसी

उच्चकुलमें जन्म हुआ है। न्याय-मन्दिर का देवता एक निष्पक्ष निर्विकार, जाति-कुल-हीन, ममता-माया के आवरण से मुक्त, यश-अपयश के परे रहनेवाला मनुष्य है। महाराणा यदि आप इस समय इन दोनों को दंड देंगे तो संसार यही समझेगा कि मनुष्य का मनुष्य से प्रेम करना पाप है। मैं नहीं जानती कि एक राजपूत का एक भीलनी से प्रेम करना कोई अपराध है और एक भीलनी का एक राजपूत के साथ स्नेह-सम्बन्ध जोड़ना दुस्साहस है। हमने नीच और ऊँच की भावनाएँ प्राणों में पालकर अपने देश को सैकड़ों टुकड़ों में बाँट लिया है। मैं आपसे पूछती हूँ, यदि भीलों को आप अपने समान अधिकार देने को प्रस्तुत नहीं तो क्यों वे निरन्तर अपमान के बाण प्राणों पर झेलने के लिए मेवाड़ की स्वाधीनता के लिए अपने प्राणों की बलि दें? क्यों हज़ारों की संख्या में वे आपकी सेना में भरती हों? महाराणा, केवल वंश की उच्चता के दंभ को राजी करने के लिए इन दो प्राणों की बलि चढ़ाने की आवश्यकता नहीं। मैं आज आपसे भीख माँगने आयी हूँ! वंशाभिमान के विरुद्ध प्रेम की अर्ज़ी पेश करने आयी हूँ। महाराणा! श्यामा और राजकुमार को विवाह करने का अधिकार मिलना चाहिए।

महाराणा—तुम ठीक कहती हो, चारणी! सेनापति! जाओ आंज रणयात्रा स्थगित रखो। आज मेवाड़ के युवराज का भीलराज की कन्या से विवाह होगा।

सेनापति—आपकी आज्ञा सर आँखों पर, किन्तु सैनिक अनुशासन भी आपसे कुछ प्रार्थना करना चाहता है। ऐसा जान पड़ता

है कि न्यायाधीश पर पिता ने विजय पा ली है।

महाराणा—नहीं सेनापति। तुम भूल करते हो। न्यायाधीश अपना कार्य करेगा; किन्तु उसके सामने प्रेम की जो अर्ज़ी आयी थी उसका पिता के रूप में नहीं, न्यायकर्ता के रूप में मैंने फ़ैसला सुनाया है और सैनिक अनुशासन की अर्ज़ी का फ़ैसला कल सुनाया जायेगा। अच्छा अब हम लोग विदा होते हैं।

[सबका प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान-सैनिक-शिविर के पास काली का मंदिर। राजकुमार और श्यामा का एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए प्रवेश]

कुमार—श्यामा, पानी के दो बुलबुलों की तरह हमारा-तुम्हारा मिलन है। संसार के महासमुद्र में दो दिशाओं से दो बुलबुले उठे। एक दूसरे की तरफ़ बढ़े—और एक होकर अब दो नहीं हो सकते।

श्यामा—किन्तु, अभीतक महाराणा के न्याय की तलवार हमारे सिर पर लटक रही है।

कुमार—मेवाड़ का न्याय-दण्ड बहुत कठोर है। आज महाराणा क्या फ़ैसला करेंगे, यह मैं पहिले से ही जानता हूँ।

श्यामा—हम इस संसार में भूल से ही आ गये। हमारी वीणा के स्वर संसार के कोलाहल में नहीं मिल सके। हम यहाँ के राज-नियमों से विद्रोह करके अपनी स्वासों को सुरक्षित नहीं रख सकते।

[नेपथ्य में गान]

किसने भावी को पहचाना !

जो बादल बरसाते पानी
जिससे पाती भूमि जवानी
वे भी बन जाते तूफ़ानी
खेल उन्हें है वज्र गिराना।
किसने भावी को पहचाना !

वह प्रशांत सागर सोता है,
किंतु, अशांत अभी होता है,
वह जहाज़ जीवन खोता है,
लहरें हैं यम का मुसकाना।
किसने भावी को पहचाना !

नभ की यह सिंदूरी रेखा,
बनती निशि में काले लेखा,
जग ने कब अपना जग देखा,
छिपा हँसी में अश्रु गिराना।
किसने भावी को पहचाना !

श्यामा—चारणी बहिन आ रही है ! चारणियों के दिल में भी प्रेम की हिमायत करने की भावना है, यह पहिली बार ही देखने में आया। यह जो पूर्णिमा से भी अधिक उज्ज्वल, शराब से भी अधिक उन्मादक और अमृत से भी अधिक

जीवन-दायिनी रात्रि हमें प्राप्त हुई है, इसका श्रेय चारणी बहिन को ही है। हमारा प्रेम जो अन्धकार में मुँह छिपाकर सिसक रहा था, वह ऊषा के सुहाग भरे प्रकाश में खुलकर गा सका है।

[गाते गाते चारणी का प्रवेश]

चारणी—*किसने भावी को पहचाना।*

चारणी का प्रेम के दीवानों को संपूर्ण हृदय से आशीर्वाद।

श्यामा और कुमार—आदरणीया चारणी के चरणों में हमारा प्रणाम।

चारणी—श्यामा ! तुम मेवाड़ के भाग्याकश में विनाश की तारिका बनकर आयी हो। तुम जितनी सुन्दर हो, तुम्हारी आभा में उतनी ही ज्वाला है। युग-युग के अन्ध-विश्वासों को लात मारकर, वंश-मर्य्यादा की अवहेलना करके, महाराणा ने अपने हाथ से एक भीलनी की ओढ़नी से राजकुमार के उत्त-रीय का छोर बाँध दिया है, वह एक साधारण-सी घटना नहीं है। आज जिस रूढ़िवाद का सर्प भीतर ही भीतर फुफ-कार रहा है उसके विष से श्यामा का सुहाग कितने दिन तक अम्लान रह सकता है यह विधाता के सिवाय कोई नहीं जानता।

श्यामा—बहिन, मेरा जीवन तब प्रारम्भ हुआ था, जब कि मैंने पहिली बार कुमार को देखा था। मेरे जीवन की जवानी तब आयी थी जबकि हमारा गठ-बंधन हुआ था और मेरा जीवन तब समाप्त हो गया जबकि हमारी साँसे एक दूसरे को छूने

लगीं। अब श्यामा समाप्त हो चुकी, जो कुछ शेष है वह कुमार की छाया है। श्यामा तो एक प्रलय का झोंका लेकर आयीं थी और उस झोंके से राजमहलों का अभिमान हिलाकर चले जाने में ही उसकी स्वाभाविकता है। एक क्षण के लिए भी मुझे संसार ने बाप्पा रावल के वंशज की अर्धाङ्गिनी माना है, अपने इस विजयोल्लास के प्रकाश में जीवन की शेष अँधेरी रातें मैं संतोष के साथ व्यतीत कर दूँगी।

[महाराणा और सेनापति का प्रवेश। श्यामा और राजकुमार महाराणा के चरण छूते हैं]

महाराणा—यशस्वी हो बेटा। तुम्हारी कीर्ति अमर हो श्यामा! न्यायाधीश बनने के पहिले पिता का आकुल हृदय अपने पुत्र और पुत्रवधू को अपने हृदय के सम्पूर्ण बल से आशीर्वाद देता है। मेवाड़ के इतिहास में तुम दोनों नक्षत्रों के समान चमकोगे। अच्छा! अब तुम दोनों की पेशी मेवाड़ के महाराणा की अदालत में होगी। सेनापति! बोलिए राजकुमार के विरुद्ध तुम्हारा क्या अभियोग है?

सेनापति—महाराणा! वह क्षणिक ज्वार था। मेरा राजकुमार के विरुद्ध कोई अभियोग नहीं। जिस हृदय में कल सुहाग का प्रकाश हुआ है—वहाँ मैं शोक का अन्धकार नहीं फैलाना चाहता। जहाँपर कल आनन्द की भैरवी बजी है, वहाँ वेदना का विहाग नहीं छिड़वाना चाहता। जो होना था हो चुका; मुझे जो भ्रम था दूर हो चुका। मैं कुमार से अपनी धृष्टता की क्षमा चाहता हूँ।

चारणी—किन्तु देश ने अभी तक अपना अभियोग वापिस नहीं

लिया। वंश और जाति का श्यामा के विरुद्ध जो अभियोग था उसका फ़ैसला श्यामा के पक्ष में हो चुका है और वह उसका पुरस्कार पा चुकी है। किन्तु जाति और वंश से भी बड़ी चीज़ हमारी जन्म-भूमि है और उस जन्म-भूमि का युवराज के विरुद्ध यह अभियोग है कि उसने प्रेम को कर्तव्य से ऊँचा स्थान दिया है, उसने प्रेयसी को जन्म-भूमि से ऊँचा माना है, रण-यात्रा पर निश्चित समय पर आने में विलम्ब किया है। महाराणा देश-द्रोही को जो दण्ड दिया जाता है क्या कुमार उसके भागी नहीं ?

महाराणा—अवश्य ! क्यों कुमार तुम इस अभियोग को असत्य सिद्ध कर सकते हो ? तुम्हारा जो मुख्य गवाह था वह तुम्हारे विरुद्ध हो गया है।

कुमार—मेरा गवाह पक्ष और विपक्ष की सीमाओं के परे है। उसने सत्य को सामने रख दिया है और अपराधी दण्ड सहने के लिए प्रस्तुत है।

महाराणा—तो फिर मैं तुम्हें प्राण-दण्ड की आज्ञा देता हूँ। काँपते क्या हो सेनापति, तुम्हें आश्चर्य होता है कि एक पिता के मुँह से अपने पुत्र के लिए प्राण-दण्ड की आज्ञा कैसे निकल सकी ?

सेनापति—हाँ ? महाराणा यह आश्चर्य की बात है ही। युवराज मेवाड़ के भावी महाराणा हैं। और महाराणा के दूसरा और कोई पुत्र भी नहीं है। युवराज ने आपके साथ और मेरे साथ रहकर क्षत्रियत्व का पूर्ण तेज अनेक युद्धों में प्रकट किया है। आप अपने भाई विक्रमाजीत और उदयसिंह को भी जानते

हैं। आपके अनुज विक्रमाजीत वासना के पुजारी हैं और उदय सिंह शिशु। उनके हाथों में मेवाड़ का भविष्य उज्ज्वल न रह सकेगा। देश के आशा-केन्द्र युवराज के प्राणों की भिक्षा मेवाड़ का सेनापति महाराणासे माँगता है। मेवाड़के महाराणा की ओर से न्यायाधीश महाराणा के आगे अनुरोध करता हूँ कि कुमार को क्षमा किया जाये। मैं नव-विवाहिता—श्यामा की ओर से उसके सुहाग की भीख माँगता हूँ।

महाराणा—न्यायाधीश ! मेवाड़ के सेनापति, मेवाड़ के महाराणा, और नवविवाहिता नारी के अनुरोध को न्याय के विरुद्ध जाने के लिए उपयुक्त कारण नहीं समझता। मेरी आज्ञा का पालन होना ही चाहिए। भविष्य में मेवाड़ का प्रत्येक मनुष्य जान ले कि देश की स्वाधीनता के लिए जिसकी पुकार हो, उसी समय उसे आना पड़ेगा, नहीं तो उसे यही दण्ड भोगना पड़ेगा जोकि मेवाड़ के युवराज ने हँसते-हँसते स्वीकार किया है। कहो राजकुमार, तुम मरने के लिए प्रस्तुत हो ?

राजकुमार—यह मेरा सौभाग्य है।

महाराणा—तुम काली की मूर्ति के सामने खड़े हो जाओ।

[कुमार मूर्ति के सामने जाकर खड़े होते हैं। श्यामा भी उनके बगल में जाकर खड़ी होती है]

चारणी—श्यामा तुम कहाँ जाती हो ! महाराणा ने केवल राजकुमार की मृत्यु की आज्ञा दी। तुम्हें अभी इस दुनिया में ही रहना होगा। वीर पुरुषों की उनके तीर के निशाने की तरह सुहागरात भी व्यर्थ नहीं जा सकती। मेवाड़ का न्याय-दंड आज तीन-तीन प्राणों का भूखा नहीं है। तुम्हें मृत्यु के

पथ पर कुमार को अकेला ही जाने देना पड़ेगा। मनुष्य का फ़ैसला चाहे हम न मानें किन्तु विधाता के भाग्य-विधान के विरुद्ध कुछ भी करने का हमें अधिकार नहीं है।

[श्यामा की आँखों में आँसू आते हैं]

चारणी—अभी तुम हँसती थीं! राजकुमार को प्राणों का दण्ड सुनाया गया, तब भी तुम्हारी आँखोंकी बिजली ज़रा भी मंद नहीं हुई थी। अब आँखों के बादल बरसने क्यों लगे?

श्यामा—विधाता का न्याय-मंदिर मनुष्य के न्याय-मंदिर से भी अधिक निष्ठुर और कठोर है।

महाराणा—सेनापति यह लो मेरी तलवार।

[सेनापति को तलवार देता है]

महाराणा—कुमार काली के आगे अपना मस्तक झुकाओ। भवानी की प्यासी जीभ तुम्हारा ख़ून माँग रही है।

[कुमार भवानी के आगे अपना सिर झुकाते हैं। श्यामा चीत्कार करके चारणी के चरणों में गिर जाती है]

महाराणा—सेनापति! बढ़ो और देवी के चरणों में यह बलि चढ़ादो। इतनी बहुमूल्य बलि चढ़ाने का सौभाग्य आज तुम्हें मिल रहा है। आज तुम्हारे जैसा भाग्यवान कौन होगा? जाओ मेरी आज्ञा का पालन करो।

सेनापति—महाराणा! ऐसा निष्ठुर कार्य·······

महाराणा—सेनापति! अनुशासन भंग करने का दण्ड तुम जानते हो।

[सेनापति कुमार के पास पहुँचते हैं और तलवार उठाते हैं]

पटाक्षेप

: ६ :

वाणी-मंदिर

पहला दृश्य

['आनन्द' मासिक पत्रिका के सम्पादक श्रीयुत चंद्रप्रकाश वर्मा का मकान। वर्माजी की पत्नी मालतीदेवी बैठक के कमरे में एक कोच पर बैठी हुई, एक पुस्तक पढ़ने में लीन है। उसके बैठने के ढंग में अल्हड़ता है, सर पर से साड़ी खिसक गयी है, बाल बिखरे हुए हैं। जम्पर इस ढंग का बना हुआ है कि यौवन का उभार मधुकरों का मन उभारे।]

मालती—(पढ़ते-पढ़ते पुस्तक टेबल पर रखकर, आईने के सामने खड़ी होकर बाल सम्हारती हुई) यह कुमार कवि भी एक रहस्य है। इसकी कविता में कितना आकर्षण है। इसकी कविता पढ़ते-पढ़ते हृदय उसके जीवन से एकरूप हो जाना चाहता है। इसकी पंक्ति-पंक्ति वेदना-सिंधु है। इतनी वेदना प्राणों में पाले यह व्यक्ति संसार में कैसे रहता है। इसके आँसुओं को मैंने केवल कविताओं में देखा है, यदि आँखों में देखती तो अपने रूमाल को उससे पवित्र करती।

[वर्माजी का प्रवेश]

वर्माजी—मालती !

मालती—आज तो आप जल्दी लौट आये। आज आपके मित्रों ने इतनी जल्दी छोड़ कैसे दिया! आज आपके मुँह से बीयर की सुगंधि क्यों नहीं आ रही, देवता !

वर्माजी—तुम मेरा मज़ाक उड़ाती हो, मालती! सदा रोनी सूरत बनाए बैठे रहना, संसार के आनन्द-उत्सव से वंचित रहना क्या इंसानियत है? तुम्हारे कुमार कवि की तरह केवल आँखों की शराब पीकर बेहोश होजानेवाले तो मेरे प्राण नहीं हैं।

मालती—मेरे कुमार कवि! यह आप क्या कहते हैं?

वर्माजी—यह मैं कुछ नहीं कहता। इसे मैं बुरा नहीं कहता। वह तुम्हें अच्छा लगता है, तो इससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। उस व्यक्ति में इतना साहस नहीं है कि वह अपनी सीमाएँ पार करे। वह तो केवल स्फूर्ति खोजता है। तुम उसकी स्फूर्ति बन सको तो संसार का कल्याण ही करोगी।

मालती—तुम बड़े नीच हो!

वर्माजी—संसार में नीच-ऊँच कुछ नहीं,मालती! यह केवल रुपया है जो मनुष्य को नीच-ऊँच बनाता है। तुम्हारा कुमार कवि त्रिकाल में राजा, रईसों, मंत्रियों और ऊँचे पदाधिकारियों के साथ सहभोजों में नहीं बैठ सकता और तुम्हारा यह नीच वहाँ ऊंचा-से-ऊँचा आसन पा सकता है। मैं तुम्हारे कुमार कवि की तरह ऊँचा बनकर रहूँ तो बताओ कैसे तो तुम्हारे ये ठाट चलें और कैसे मैं ऐश करूँ।

मालती—आत्मा को काली करने से...

वर्माजी—पगली,आत्मा कभी काली नहीं होती। हम निर्विकार भाव से सब करते हैं। इन राजा-रईसों से हमारी जीविका चलती है, खाली 'आनन्द' पत्रिका के भरोसे बैठे रहें तो बस फाके ही करने पड़ें। ये लोग शराब पीते हैं, उनके साथ बैठने योग्य

बनने के लिए मुझे भी पीनी पड़ती है। ये लोग वेश्याओं से जी बहलाते हैं, मुझे भी ऐसा करना आवश्यक है। ऐसा न करूँ तो वे मुझे पूछें ही क्यों ?

मालती—आप धूर्त और निर्लज्ज हैं !

वर्माजी—यह तो व्यापार है,मालती! इसमें निर्लज्जता की क्या बात ! अब छोड़ो इन बातों को। तैयार हो जाओ सिनेमा चलना है ·। आज बहादुरपुर के दीवान साहब ने मुझे और तुम्हें सिनेमा के लिए निमंत्रित किया है।

मालती—मैं नहीं जाऊँगी !

वर्माजी—मैं नहीं जाऊँगी! यह तेरे बाप का घर नहीं है। यह'आनंद' सम्पादक श्रीमान् चन्द्रप्रकाश वर्मा का मकान है। क्या तुम्हें मुझे और अपने आपको गरीब बनाए रखने में सुख मिलता है ?

मालती—आपको तो मैं नहीं रोकती !

वर्माजी—मेरे जाने से क्या होगा। तुम्हारे गए बिना कुछ न बनेगा। सिनेमा हाउस में दो-तीन घण्टे बैठना ही तो है। इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है ?

मालती—मुझे वह आदमी बहुत बेहूदा जान पड़ता है। उस दिन जब हम लोग होटल में चाय पी रहे थे वह ऐसे देख रहा था जैसे मुझे भी पी जाना चाहता है।

वर्माजी—लेकिन वह पी तो नहीं गया। ऐसे लोगों को उल्लू बना कर रियासत के खज़ाने का कुछ रुपया हमारे जेब में हम भर सकें तो इसमें क्या बुराई है।

मालती—तुम नामर्द हो ! मैं नहीं जाऊँगी !

वर्माजी—(खूँटी पर से हंटर उठाकर) तुम भूल गयीं, कि इस हंटर ने एक दिन तुम्हारी खाल उधेड़ दी थी, जान पड़ता है तुमपर अब कुमार का जादू चला है।

[कुमार का प्रवेश]

कुमार—यह क्या वर्माजी !

वर्माजी—कुछ नहीं, यह पति-पत्नी की हँसी-दिल्लगी है। इससे मैं कह रहा हूँ....।

मालती—नहीं-नहीं, इनसे आप कुछ न कहें, मैं तैयार होती हूँ।

वर्माजी—हाँ, अब तुम भली लड़की बनीं ! यह जम्पर ठीक है। इसके साथ की साड़ी पहन लो और चलो। अभी आया, सिगरेट ले आऊँ।

[वर्मा का प्रस्थान। मालती आलमारी में से साड़ी निकालती है।]

कुमार—(जाते हुए) मैं जाऊँ ! आपको कपड़े बदलने हैं !

मालती—नहीं-नहीं, मुझे सिर्फ साड़ी बदलनी है, वह आपके सामने भी बदल सकती हूँ। मेरा शरीर आपकी दृष्टि की अपेक्षा पवित्र नहीं है।

[मालती पहनी हुई साड़ी उतार देती है और दूसरी पहनने लगती है। उसकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं।]

कुमार—तुम रो रही हो, मालती ! तुम्हें क्या अभाव है ? रोना तो हम जैसे अभागों के लिए है।

मालती—(साड़ी पहनकर) संसार में कौन अभागा है इसे समझने की बुद्धि थोड़े लोगों में है। मेरा जीवन किस नरक की यंत्रणा में जल रहा है यह आप नहीं जानते, कुमार ! मेरा जी करता है मैं ज़हर खाकर मर जाऊँ ! (फूट-फूटकर रोने लगती है

कुमार—(पास आकर मालती के आँसू पोंछता हुआ) मालती, मैं अकिंचन, अपना भी बोझ नहीं सम्हाल सकता, फिर तुम्हारे लिए कुछ करना मेरे लिए कैसे सम्भव हो सकता है। मैंने तुम्हें अनेक बार हाट-बाज़ार, खेल-तमाशों और सैर-सपाटों में हँसते-मुसकराते, उछलते-कूदते देखा है। मैंने लोगों के मुँह से तुम्हारे विषय में विचित्र-विचित्र बातें सुनी हैं। मैंने तुम्हें उल्लास के आकाश में उड़नेवाली चिड़िया ही समझा था। आज ज्ञात हुआ कि तुम्हारी आँखों में पानी भी है, तुम्हारे हृदय में आग भी है। बैठ जाओ, मालती! अपने हृदय की व्यथा मुझसे कहो।

[दोनों पास-पास कोच पर बैठ जाते हैं।]

मालती—कुमार! आह! मैं वह सब कुछ नहीं कह सकती। कई बार मेरा जी करता है मैं भाग जाऊँ। लेकिन, मैं उन्हें बहुत प्यार करती हूँ। वे आए दिन मुझे हंटर से मारते हैं, फिर भी मैं उन्हें नहीं छोड़ सकती। वे मेरे टुकड़े-टुकड़े कर डालें फिर भी मैं उन्हें नहीं छोड़ सकती। लेकिन, उन्हें मुझसे रत्ती भर भी प्रेम नहीं हैं। वे मेरा मूल्य...

[वर्माजी का प्रवेश]

वर्माजी—अच्छा, तुम तैयार हो गयीं। तो चलो। भाई कुमार तुम भी चलो न। सुनते हैं, बड़ी अच्छी तस्वीर है।

कुमार—नहीं, मैं घर जाऊँगा।

मालती—नहीं, कुमार तुम्हें चलना पड़ेगा। मेरी खातिर।

वर्माजी—यदि उन्हें काम हो, तो जबर्दस्ती न करो।

मालती—काम! काम क्या हो सकता है! तुम्हें चलना ही पड़ेगा।

राक्षसोंके बीचमें एक तो देवता हो।(कुमार का हाथ पकड़ लेती है।)

कुमार—अच्छा चलता हूँ।

[तीनों का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[कुमार का घर। कुमार की पत्नी सरला अत्यन्त सादे कपड़े पहने हुए कमरे में बैठी है। कमरे में सुरुचि के चिह्न तो हैं, लेकिन गरीबी का अधिकार साफ़ नज़र आ रहा है। सरला उठकर पुस्तकों की अलमारी साफ करने लगती है।]

सरला—आज वे अभी तक नहीं आये। आह, मेरा जी धड़कता है। संसार को अमृत देने के लिए वे विष के घूँट पीते हैं। वे कवि हैं, संसार उन्हें आदर की दृष्टि से देखता है, इस गौरव ने मुझे कितनी बार प्रफुल्लित किया है।

[एक ५ वर्ष की बालिका का प्रवेश]

बालिका—माँ भूख लगी है।

सरला—बेटी, बाबूजी को आने दो।

[बालिका का प्रस्थान]

घर में आज एक दाना भी नहीं है। पास में एक पैसा भी नहीं है। दूधवाले ने दूध बन्द कर दिया है। बच्ची भी ऐसी दुर्घटनाओं की अभ्यस्त हो गयी है। कैसी चुपचाप चली गयी। भगवान तुम जिन्हें अधिक प्यार करते हो, उनपर इतनी आपत्तियाँ क्यों डालते हो। (आँखों में आँसू भर आते हैं। बाहर से 'मिस्टर कुमार, मिस्टर कुमार'की आवाज़ आती है।)

सरला—अन्दर आ जाइए।

[सरला के बहनोई घनश्याम का प्रवेश]

घनश्याम—(एक कुर्सी पर बैठकर) बड़ी कठिनाई से मकान मिला।

सरला—कब आये ?

घनश्याम—परसों ही आया हूँ। अब इसी शहर में मुझे रहना है। मेरी यहाँ बदली हो गयी है।

सरला—बड़ी खुशी की बात है।

[बालिका का फिर प्रवेश]

बालिका—बाबूजी आये नहीं ! मुझे भूख लगी है।

सरला—नहीं बेटी, अभी नहीं आये।

[बालिका फिर चली जाती है]

घनश्याम—कुमार बाबू अभी तक नहीं आये। मैंने आज उन्हें देखा तो था। एक स्त्री का हाथ पकड़े हुए कहीं जा रहे थे। वे मुझे नहीं देख पाये और मैंने उन्हें पुकारना अच्छा न समझा।

सरला—कैसी स्त्री थी वह !

घनश्याम—बहुत सुन्दर ! अप्सरा ! मेरा भी जी करता है, इसी तरह मैं भी उसका हाथ पकड़कर चल सकूँ। छोड़ो इन बातों को। यह बताओ, तुमने यह क्या हाल बनाया है। घर के भीतर झाँकते ही मेरा दिल काँप उठा। तुम्हारे पति क्या कुछ नहीं कमाते। या कमाकर बाहर खर्च कर आते हैं।

सरला—जीजाजी, आप मेरा अपमान करने आये हैं।

घनश्याम—तुम्हारा अपमान ! यह क्या कहती हो, सरला ! मेरे हृदय में तुम्हारे लिए जो स्थान है उसे क्या तुम नहीं जानतीं। तुम्हारी बड़ी बहन तो मिट्टी की पुतली है, न रूप है न गुण। और तुम....

सरला—मुझमें रूप भी है, गुण भी यही तो आप कहना चाहते हैं। इस रूप-गुण की प्रशंसा मैं आपके मुँह से अनेक बार सुन चुकी हूँ। आपका आशय क्या है?

घनश्याम—मैं कहता हूँ तुम यह ग़रीबी का बोझा अपने सर पर क्यों लादे हुए हो। मैं साफ देख रहा हूँ कि आज तुम्हारे पास बच्ची को पिलाने के लिए दूध भी नहीं है। ऐसे कष्ट तुम क्यों सहती हो?

सरला—चारा ही क्या है?

घनश्याम—चारा ही क्या है? क्या तुम मेरे लिए परायी हो। मेरा घर तुम्हारा ही है।

सरला—लेकिन इस कृपा का बदला तो आप न चाहेंगे?

घनश्याम—बदला क्या! तुम मेरी आँखों के आगे होगी, यह क्या कम है?

सरला—समझी, जीजाजी! आज आँखों की प्यास बुझाने के लिए आप इतनी कृपा करने चले हैं, कल हृदय की आग....

घनश्याम—तुम तो कवि के साथ रहकर कविता करने लगी हो। कुमार बाबू तुम्हारी कदर नहीं करते, इससे मेरा दिल दुखता है। तुम तो बन्दर के गले में मोतियों की माला की तरह हो।

सरला—आप मेरे अतिथि हैं, तिसपर मेरी बहन के पति हैं, आपके साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकती। नहीं तो आप जैसे लंपटों को मैं घर के अन्दर नहीं घुसने देती।

घनश्याम—सरला, तुम नादान हो! बचपन से नादान हो। जब तुम्हारे पिता ने तुम्हारे सामने मेरा और कुमार दोनों का नाम उपस्थित किया था तब भी तुमने एक धनी राय बहादुर के

पुत्र को ठुकराकर एक भिखारी कवि को चुना था, तब मैंने समझा था जीवन की वास्तविकता तुम्हें अपनी भूल समझा देगी। मैं देखता हूँ, तब तुम नादान थीं, आज पागल हो। जान-बूझकर नरक-ज्वाला में जल रही हो। तुम इससे आसानी से पार हो सकती हो। कवि के सर पर बोझ बन कर उसकी कला का स्वर रुद्ध कर रही हो, क्या इससे उनका कुछ लाभ है? उन्हें स्फूर्ति शहर की अन्य कुमारियों और ललनाओं में मिल जाती है। तुम तो उनके सिर पर एक बोझ ही हो।

सरला—तुम ठीक कहते हो, जीजाजी! मैं उनके सर पर बोझ ही हूँ। मुझे दुख है कि मैंने आपकी कृपा की अवहेलना की। इस समय आप जायें, कल इसी समय आयें और साथ में थोड़ा ज़हर भी लेते आयें। मैं बहुत हलकी बनकर आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी। जो मुझे बोझा समझता है, वह स्वयं भी मेरे ऊपर बोझा है। मैं सब तरह के बोझे उतारकर आपके पास उपस्थित हूँगी। अब आप जाइए।

घनश्याम—अच्छा नमस्ते!

[घनश्याम का प्रस्थान]

सरला—राक्षस! ग़रीबी भी अभिशाप है। ग़रीब स्त्री को भगवान रूप क्यों देता है। मैंने सदा पति के यश को ही अपने जीवन की धन्यता समझा है। भूखे पेट सो जाने पर भी कभी अपने भाग्य को नहीं कोसा। उनकी किताबें छपवाने के लिए अपना एक-एक ज़ेवर बेच दिया है। उनकी कला, जिसके चरणों पर संसार सर झुकाता है, क्या साधारण वस्तु

है। वह राय बहादुर का बेटा, डिप्टी कमिश्नर कुछ रुपयों से मेरा शरीर खरीदना चाहता है! गरीबी, तू मनुष्य की कीमत इतनी कम कर देती है। और रुपया, तू मनुष्य को राक्षस बना देता है।

[दरवाज़े पर किसीके हँसने खिल-खिलाने की आवाज़ आती है]

लो वे आ गये। साथ में कोई स्त्री जान पड़ती है। कैसी हँस-हँसकर बातें हो रही हैं। देखूँ तो!

[प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[कुमारी चन्द्रिकादेवी का मकान। चन्द्रिकादेवी के पिता शहर के एक धनी रईस थे। उनकी छः मास पहले अचानक मृत्यु हो गयी। चन्द्रिकादेवी के अतिरिक्त उनकी कोई संतान न थी। चन्द्रिकादेवी व्यवहार-कुशल शिक्षित लड़की है। वह उस धरातल पर रहती है जहाँतक पहुँचने का वासना का साहस नहीं होता। न जाने कितने हृदयों में उसके धन, गुण और रूप ने लोभ जाग्रत किया है, किंतु किसीको अपना प्रार्थना-पत्र उसके चरणों तक ले जाने का साहस नहीं हुआ। वह अपने अध्ययन में मस्त रहती है। चन्द्रिका और मालती का प्रवेश। दोनों पास-पास कोच पर बैठ जाती हैं।]

चन्द्रिका – मुझे अपने जीवन में एक साथी चाहिए।

मालती—तो साथियों की क्या कमी है। ऐसा कौन युवक हृदय होगा जो तुम्हें पाकर अपने आपको धन्य न समझे। तुम धन-कुबेर की पुत्री हो, अपने स्वर्गीय पिता की संपूर्ण संपत्ति की मालकिन हो!

चन्द्रिका—मैं पुरुषों से घृणा करती हूँ, मालती ! पुरुष है पशु ! वह स्त्री को खिलौना समझता है। मैं किसीके हाथ का खिलौना नहीं बनना चाहती।

मालती—लेकिन, जो चरणों का दास बनना चाहे।

चन्द्रिका—वह पुरुष ही न होगा। पुरुष अपना स्वभाव नहीं छोड़ सकता। वह पर्वत है, कभी-कभी उसका हृदय द्रवित हो जाता है, लेकिन फिर भी कठोरता ही उसका धर्म है। मैं उस कठोरता को अपने गले का हार नहीं बनाना चाहती।

मालती—फिर क्या चाहती हो ?

चन्द्रिका—मैं क्या चाहती हूँ, यह मैं स्वयं नहीं जान पाती। मेरे प्राणों की पुकार मुझे ही सुनाई नहीं देती। बहन, पुरुष भी तो अकेले जीवन बिता देते हैं, वे पुरुषों में हँस-खेलकर भी अपना जी बहला लेते हैं, ऐसा क्या हम स्त्रियाँ नहीं कर सकतीं। मैं तुम्हें अपनी साथिन बनाना चाहती हूँ।

मालती—क्यों ?

चन्द्रिका—इसलिए कि तुम सुन्दर हो। और तुम्हारे साथ रखने में मुझे किसी प्रकार का भय नहीं है।

मालती—कुछ पुरुष भी ऐसे होते हैं जो नारियों से कोमल होते हैं। जिनके हृदय की आग संसार के लिए शीतल प्रलेप होती है।

चन्द्रिका—ऐसे पुरुष को तुमने कभी देखा है।

मालती—हाँ, हमारे शहर के प्रसिद्ध कवि कुमार।

चन्द्रिका—हाँ, हाँ, उनकी पुस्तक मैंने पढ़ी हैं। सच उनकी जैसी कविताएँ मैंने कभी नहीं पढ़ीं। वह हमारे हिंदी-साहित्य का

गौरव हैं। तुम बहुत अच्छा गाती हो। मैं उनकी 'वेदना' पुस्तक देती हूँ। ज़रा गाकर उसका एक गीत सुनाओ।

[उठकर आलमारी में से एक पुस्तक निकालकर मालती को देती है।]

मालती—(गाती है)

वेदना मेरी न छीनो
वेदना में प्राण मेरे।
तारिकाओं की हँसी से
तुम भरो आकाश अपना।
अप्सराओं के मधुर स्वर
से भरो अधिवास अपना।
फूल से फूलो जगत में
तुम भरो उल्लास अपना।
ओस के आकुल दृगों में
जगमगाते गान मेरे!
वेदना मेरी न छीनो
वेदना में प्राण मेरे।
खून अपने दीपकों में
तेल-सा भरकर हमारा।
तुम प्रकाशित खूब कर लो

स्वर्ण का मन्दिर तुम्हारा।
देख ले सपने सुखों के
नींद में संसार सारा।
कब किसी को छेद पाये
गान के ये बाण मेरे!
वेदना मेरी न छीनो
वेदना में प्राण मेरे।

अस्थियाँ लेकर हमारी
बालता संसार होली।
कौन समझेगा किसोके
भग्न उर की मूक बोली।
हम हुए नीरव व्यथा से
कर रहे हो तुम ठठोली!
कौन फोड़े सर जगत से
वह निठुर पाषाण है रे।
वेदना मेरी न छीनो
वेदना में प्राण मेरे।

[मालती की आँखों में आँसू आ जाते हैं।]

चन्द्रिका—तुम रोने लगीं। मेरा भी हृदय भीतर से टुकड़े हो रहा है। जिस व्यक्ति को इतनी वेदना मिलती है वह ज़िंदा कैसे रहता है।

मालती—वह ज़िंदा नहीं रहता, दूसरोंको जिलाने के लिए स्वयं मर जाता है। मैं एक दिन कुमार के घर गयी थी। वह दारिद्र्य का अधिवास! उस अभाव के क्रीड़ागार में रहकर वे तीन प्राणी किस तरह अपने स्वाभिमान को उन्नत करके चलते हैं यह देखकर मैं तो दंग रह गयी।

चन्द्रिका—तीन कौन ?

मालती—कवि, उसकी पत्नी और उसकी बच्ची। पत्नी कितनी सुन्दर है, हमारे वर्माजी को मिल जाये तो बेचकर अपना घर भर लें। बालिका कैसी सुकुमार कि चमेली का फूल। कवि कैसा कोमल कि तुम्हें मिल जाये तो गले का हार बनालो।

चन्द्रिका—तुम अपने दिल की बात कहती हो ?

मालती—हृदय की चाह क्या कभी पूरी हुआ करती है! मैं उस दिन गयी थी—बच्ची भूख से तड़प रही थी। घर में एक दाना भी न था—दूध की एक बूँद भी न थी। सरला रात्रि की तरह नीरव थी। कुमार सागर की तरह गम्भीर था। मैं पागल हो उठीं। यह है हमारे देश के साहित्य-साधकों के अन्तःपुर की तस्वीर!

[चन्द्रिका की आँखों में आँसू आ जाते हैं ।]

मालती—लो बहन, तुम रोने लगीं। हमारे आँसुओं से इन तपस्वियों की समस्या हल नहीं होगी। ये अपने अभावों को संसार के सामने नहीं रखते। वे जलते रहते हैं दीपक की तरह नीरव रहकर और संसार को प्रकाश देते हैं।

चन्द्रिका—मालती, यदि इस परिवार की कोई सेवा कर सकूँ तो

मैं अपने आपको धन्य समझूँगी। तुम मुझे वहाँ ले चलो ! चलो अभी चलो।

[दोनों का प्रस्थान]

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

[कुमार का घर। चारपाई पर सरला लेटी हुई है। सारा शरीर काली चादर से ढका हुआ है। घनश्याम का प्रवेश]

घनश्याम—शायद यह सरला ही सो रही है। सरला ! सरला !! गहरी नींद में है। बोलती नहीं है। क्या झकझोरकर जगा दूँ। क्या मुझे इसे छूने का अधिकार है! क्यों नहीं, कुछ क्षणों के बाद वह मेरी हो जायेगी। (मुँह पर से चादर हटाता है।) आहा, जैसे बादलों में से चाँद निकला हो। कितना आकर्षण है तुममें सरला !

[सहसा मालती और चन्द्रिका का प्रवेश। वे कमरे में घनश्याम को देखकर चौंकती हैं।]

मालती—आप कौन ?

घनश्याम—मैं-मैं-सरला का बहनोई हूँ।

चन्द्रिका—यहाँ अकेले में आप क्या कर रहे हैं।

घनश्याम—कुछ नहीं-कुछ नहीं ! मैं अपने कुमार बाबू से मिलने आया था। मैं समझा वे सो रहे हैं। चादर उठाकर देखा तो सरला थी।

मालती—तो इसमें इतने परेशान होने की क्या बात है ? तशरीफ़ रखिए।

घनश्याम—नहीं-नहीं, अब जाता हूँ। औरतों के बीच में अकेले

रहना पाप है। ऐसा कुमार ही कर सकते हैं। इज्ज़तदार आदमी को अपनी कीर्ति का ख़याल होता है।

[घनश्याम का प्रस्थान]

मालती—(सरला को हिलाती है) उठो बहन! यह भी कैसी नींद है। (हाथ पकड़ कर उठाती है।) ओह यह तो पत्थर हो रही है।

[चन्द्रिका भी पास जाती है। मालती लालटेन लेकर मुँह को गौर से देखती है।]

चन्द्रिका—मुझे तो यह टूटनेवाली नींद नहीं मालूम देती।

मालती—हाँ, ओठ नीले हो रहे हैं, इसने ज़हर खाया है।

चन्द्रिका—कुमार भी नहीं है। तुम यहीं रहो। मैं डाक्टर को लाती हूँ।

[चन्द्रिका का प्रस्थान, मालती सरला के तकिए के नीचे तलाशी लेती है। दो चिट्ठियाँ उसके हाथ लगती हैं।]

मालती—ये चिट्ठियाँ जान पड़ती हैं। पढ़ूँ। (एक चिट्ठी पढ़ती है।) 'सरला! तुमपर भगवान् ने इतनी कारीगरी इसलिए ख़र्च नहीं की कि तुम अपने रूप-यौवन को ग़रीबी की आग में जलाती रहो। मैंने एक शीशी में तुम्हारी चाही हुई चीज़ भेजी है। तुम मार्ग साफ़ करके जीवन का वास्तविक सुख ले सकती हो!" (चिट्ठी को पटक देती है) आगे नहीं पढ़ सकती। (दूसरा पत्र खोलती है।) "प्रियतम, मैं जा रही हूँ। मैं कवि के जीवन का बोझ हूँ। जो वाणी के मंदिर का पुजारी है उस पर गृहस्थी का बोझ लादना निष्ठुरता है। संसार कवि को पाकर धन्य होता है, किंतु, वह यह नहीं जानता कि उसके पेट भी होता है। उसके बीबी-बच्चे भी होते हैं। जो रात

दिन अपने प्राणों का खून पिलाकर संसार को जीवन देता है, उसके जीवन की रक्षा करना भी आवश्यक है। मैं नहीं चाहती कि तुम कवि का जीवन छोड़कर दूसरा रास्ता पकड़ो, इसलिए मैं तुम्हारे सर से अपना बोझा उठा रही हूँ। मेरे जाने का एक कारण और है कि मुझे ग़रीब की पत्नी जानकर संसार की लोलुप आँखें भी मेरी ओर झाँकने लगी हैं। मैं कवि के गौरव को कम नहीं करना चाहती। मैं जाती हूँ। आकाश के नक्षत्रों में तुम मुझे पाओगे। मुन्नी की व्यवस्था कुछ न कुछ हो ही जायेगी, इसका मुझे विश्वास है।"

[मालती की आँखों से आँसू बह पड़ते हैं। कुमार का प्रवेश।]

कुमार—कौन, मालती ! तुम रो रही हो। क्या हुआ ?

[मालती चुपचाप हाथ से पत्र बढ़ा देती है। कुमार पत्रलेकर पढ़ता है।]

मालती—कुमार ! तुम कवि हो ! तुम हर तरह के आघात सह सकते हो। तुम्हारी कोमलता ही वह बल है जो तुम्हें अभेद्य, अकाट्य और अमर बनाती है।

कुमार—सरला ! (सरला को बाहुओं में कस लेता है।) तुम्हारे लाल-लाल अधर बहुत प्यारे थे, किंतु, ये नीले-नीले ओठ उनसे भी अधिक प्यारे हैं। (चूमता है।) कवि को जीवित रखने के लिए तुम मर रही हो, शायद नहीं जानतीं कि मेरी स्फूर्ति तुम हो ! मेरी प्रेरणा तुम हो ! मेरी ग़रीबी तुमसे धन्य है। मेरी वेदना तुमसे धन्य है। तुम्हारी मूक सेवा, तुम्हारा नीरव प्यार और तुम्हारी कठिन तपस्या ही तो मेरी वीणा के तार हैं। मैं वाणी के मंदिर का पुजारी हूँ तुम तो साक्षात वाणी हो। मेरे गीत में तुम्हारा ही स्वर है, सरला !

[चन्द्रिका का डाक्टर को लेकर प्रवेश ।]

चन्द्रिका—डाक्टर बेनर्जी ! यदि लाख रुपया ख़र्च करने पर भी सरला के जीवन की रक्षा हो तो मैं खर्च करूँगी !

डाक्टर—(सरला की छाती की धड़कन देखकर) साँस अभी बाकी है । मैं प्रयत्न करूँगा, मिस चन्द्रिका देवी !

चन्द्रिका—डाक्टर को सो रुपए का नोट देती हुई, लीजिए ! यदि आप इलाज में सफल हुए तो मालामाल हो जायेंगे ।

[डाक्टर सरला के इंजेक्शन लगाने का सामान करता है ।]

कुमार—आप !

चन्द्रिका—कुमार ! मुझे आप अपनी एक बहन समझें । जो वाणी के मंदिर का पुजारी है उसका व्यक्तित्व संसार की सम्पत्ति है। केवल आत्मतेज के बल पर संसार में जिया नहीं जा सकता। तुम्हारे गीतों ने तुम्हारे प्राणों की पुकार मेरे पास पहुँचा दी है । मैं आयी थी तुम्हारी कुछ सेवा करने के लिए, लेकिन यहाँ जो कुछ देखा, उसकी मुझे कल्पना ही न थी । संसार कितना निष्ठुर है ?

कुमार—संसार बहुत मधुर है, बहुत प्रेमपूर्ण है, बहुत स्नेह-शील है ।

डाक्टर—(जो इंजेक्शन लगा रहा था) मुझे मरीज़ के अच्छे होने की आशा है ।

(सब सरला के पास बैठते हैं ।)

[पटाक्षेप]

: ७ :

गृह-मंदिर

पहला दृश्य

[समय—रात के १२ बजे सुरेन्द्र अपने कमरे के द्वार बन्द किये कुर्सी पर अकेला बैठा है। उसके कमरे में एक कोने में एक पलंग बिछा है, बीच में एक टेबिल के चारों ओर कुछ कुर्सियाँ रक्खी हैं। टेबिल पर कुछ पुस्तकें अस्त-व्यस्त पड़ी हैं। एक आलमारी है जिसका दरवाज़ा खुला हुआ है जिसमें अनेक चीज़ों में एक शराब की बोतल, एक सोडे की बोतल और शीशे का गिलास नज़र आता है। सुरेन्द्र उठकर अलमारी खोलकर शराब और सोड़े की बोतल, तथा शीशे का गिलास लाकर टेबिल पर रखता है तथा ढालकर पीता है। फिर एक कोने में पड़े हुए हारमोनियम को उठा लाता है और गाता है।]

सुरेन्द्र—

पी ले, पी ले,
छक-छककर मधु पी ले!

उपवन में कलियाँ मुसकातीं,
अलियों को हैं पास बुलातीं,
मद से भरे पात्र दिखलातीं,

लाल, गुलाबी, पीले, नीले ;
पी ले, पी ले,
छक-छककर मधु पी ले !

जग में शत-शत कुञ्ज निराले,
पी तू नित्य नये मधु-प्याले,
यौवन का आनन्द उठाले,
जी ले, मतवाला बन जी ले,
पी ले, पी ले,
छक-छककर मधु पी ले !

[बाहर से दरवाज़ा खट-खटाने की आवाज़ आती है। सुरेन्द्र उठता है और दरवाज़ा खोलता है। दरवाज़े के खुलते ही एक १६-१७ वर्ष की सुन्दर लड़की कमरे में प्रवेश करती है।]

सुरेन्द्र—तुम कुमुद !

[हाथ पकड़कर अपने पास एक कुर्सी पर बैठाता है।]

सुरेन्द्र—(प्याला कुमुद की ओर बढ़ाकर) लो, तुम भी पियो।

कुमुद—क्या मैंने आज तक पी है, जो आज पिऊँगी ! मैं तो तुमसे भी कहती हूँ—यह मुँह लगाने योग्य नहीं है।

सुरेन्द्र—लेकिन, जो मुँह लगाने योग्य हैं वे तो कभी हमसे आँखें भी नहीं मिलाते—फिर हम क्या करें। तुम्हारे इस सुरेन्द्र को इसीलिए यह लाल परी प्यारी है। प्राणों में पहुँच कर जिस समय यह नाचती है—इन्द्र की अप्सराएँ मेरी आँखों के आगे सौ-सौ आमंत्रण देती हुई नज़र आती हैं !

कुमुद—सुरेन्द्र, तुम्हें अपने जीवन का मोल समझना चाहिए

उसे शराब के समुद्र में ग़र्क़ कर देने का तुम्हें अधिकार नहीं है।

सुरेन्द्र—ओह, तुम मुझे शिक्षा देने आयी हो, देवि ! इस समय रात्रि के बारह बजे हैं। इस समय मनुष्य की मनुष्यता सो रही है—पशुता जाग रही है। शिक्षा देना हो तो ब्राह्म-मुहूर्त में आना।

कुमुद—मैं आज तुमसे बहुत गम्भीर चर्चा करने आयी हूँ।

सुरेन्द्र—गम्भीर चर्चा ! मुझसे ! कैसी दुराशा है ! इसके लिए मैं पैदा ही नहीं हुआ, कुमुद ! दिन के प्रकाश में—मनुष्यों की उछल-कूद देखकर कुछ दिल बहला भी लेता हूँ—लेकिन रात्रि को जब यह खेल-तमाशा बन्द हो जाता है—मुझे प्रकृति की निस्तब्धता घायल करने लगती है। इसीलिए मुझे इस लाल पानी की और तुम्हारे जैसे एक साक़ी की ज़रूरत पड़ती है, कुमुद !

[अपनी अँगुलियों से कुमुद की ठोड़ी ज़रा ऊँची करता है]

कुमुद—लेकिन, सुरेन्द्र, संसार से भागने में आदमी सफल नहीं हो सकता। यह स्वाभाविक जीवन नहीं है।

सुरेन्द्र—स्वाभाविक जीवन तो है मृत्यु, कुमुद ! मेरी समझ में नहीं आता कि यह कर्म का चक्र क्यों फैलाया गया है। ढेर के ढेर मनुष्य पैदा कर दिये गये हैं—और उनके मस्तिष्कों को ऐसे शैतान के कारख़ाने बना डाला है कि वे इस सृष्टि के भीतर अपनी सृष्टियाँ करते रहते हैं। विधाता ने जो कुछ उन्हें दिया है—वे उससे सन्तुष्ट नहीं हैं।

कुमुद—तुम शराब पीकर दार्शनिक बन जाते हो, सुरेन्द्र !

सुरेन्द्र—हाँ, कुमुद, ऐसा जान पड़ता है—जैसे मेरी अपनी शक्ति नष्ट हो गयी है। इस संसार में एक क़दम चलने के लिए भी मुझे सहारा चाहिए। मुझसे अपने जीवन का बोझ नहीं सम्हाला जाता।

कुमुद—ऐसा क्यों है ? तुम्हारे पास वैभव है—तुम्हारे पास ज्ञान है। कर्म करने की शक्ति है। तुम तो दूसरों का भी बोझा उठा सकते हो—ऐसा क्यों कहते हो कि तुम्हें अपना ही बोझ भारी पड़ रहा है।

सुरेन्द्र—मैं अपनी अभिलाषाओं का स्वामी नहीं हूँ। हमारे परिवार की प्रतिष्ठा और मर्यादाएँ जैसे मुझे शेष संसार से काट कर अलग किये रहती हैं।

कुमुद—तुम अपना संसार स्वयं नहीं बना सकते क्या ? तुम पुरुष हो, तुममें पुरातन के खंडहर पर नूतन का महल बनाने की शक्ति होनी चाहिए।

सुरेन्द्र—नहीं, रानी ! मैं धन की गोद में पला हूँ। मेरे यहाँ सुख के सारे साधन बिना श्रम किये आते हैं। मुझमें संघर्ष करने का साहस नहीं है।

कुमुद—किन्तु, सुरेन्द्र, मुझे तुमपर अपने जीवन का बोझ डालना आवश्यक हो गया है।

सुरेन्द्र—ऐसा बोझ तो मैं बहुत उठा सकता हूँ।

[हँसता है]

कुमुद—हँसो मत, सुरेन्द्र ! मैं इसी घर में तुम्हारे साथ रहना चाहती हूँ।

सुरेन्द्र—क्यों ? तुम्हारा मकान छोटा है ? छोटा हो तो मैं दूसरा

दिलवा सकता हूँ। उसका किराया देने की शक्ति मुझमें है।

कुमुद—मैं बड़े से बड़े मकान में भी माँ-बाप के साथ नहीं रह सकती।

सुरेन्द्र—क्यों ?

कुमुद—इसलिए कि स्त्री को विवाह के पहले माँ बनने का अधिकार नहीं है।

सुरेन्द्र—कौन कहता है ?

कुमुद—माँ-बाप कहते हैं।

सुरेन्द्र—उन्होंने पहले क्यों नहीं कहा ?

कुमुद—उन्हें धन की आवश्यकता थी।

सुरेन्द्र—अब ?

कुमुद—समाज का डर है।

सुरेन्द्र—तब फिर ?

कुमुद—मुझे इस घर में स्थान देना होगा।

सुरेन्द्र—लेकिन, मैं यहाँ अध्ययन करने आया हूँ। घर बसाने नहीं। मुझे माँ-बाप से पूछना होगा।

कुमुद—पहले क्यों नहीं पूछा ?

सुरेन्द्र—तुम्हारे सौंदर्य ने नहीं पूछने दिया।

[कुमुद उठकर जाने लगती है]

सुरेन्द्र—(हाथ पकड़कर) बैठो भी। तुम नाराज़ हो गयीं, कुमुद ! मुझे थोड़ा सोचने तो दो।

कुमुद—मैंने अपना निश्चय कर लिया है—तुम्हें कुछ भी सोचने की आवश्यकता नहीं।

सुरेन्द्र—क्या निश्चय किया ?

कुमुद—यही कि तुम मेरे हो ! मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती।

सुरेन्द्र—लेकिन....

कुमुद—डरो मत, मैं तुम्हें तुम्हारे वंश की मर्य्यादा के नीचे नहीं उतारूँगी ! मैं जाती हूँ।

सुरेन्द्र—मुझे छोड़कर ?

कुमुद—(दरवाज़े के पास पहुँचकर) नहीं, तुम्हें अपने साथ लेकर।

[दरवाज़े के बाहर चली जाती है]

सुरेन्द्र—सुनो कुमुद ! सुनो कुमुद !

[कुमुद के पीछे दरवाज़े के बाहर जाता है]

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—सुरेन्द्र के बँगले के सामने का बगीचा। समय-रात्रि के ९ बजे। सुरेन्द्र एक घने पेड़ की छाया में चुपचाप बैठा है। सामने से माली आता है।]

माली—बाबू जी।

सुरेन्द्र—कहो भोला !

भोला—रात अधिक हो चली है ! घर नहीं जाइएगा !

सुरेन्द्र—घर ! इतना बड़ा घर ! मेरे लिए बहुत बड़ा है भोला। पिछले दो वर्षों में मेरी सारी दुनिया बदल गयी। माँ की प्यार भरी गोद और पिताजी का आशीर्वाद भरा हाथ सब कुछ मुझसे छिन गया। भोला, मुझे यह घर काटने को दौड़ता है !

भोला—मालिक ! माँ-बाप किसको याद नहीं आते ! लेकिन, जो आता है, वह जाता है। समय के मलहम से सबके घाव अच्छे हो जाते हैं ! मैं तो आपका गँवार नौकर हूँ—आप

को सीख देना मुझे नहीं सुहाता—लेकिन, मालिक आप जब (हाथों से बताते हुए) इतने से थे तबसे मैं आपकी टहल कर रहा हूँ। इसलिए कुछ कहने की इच्छा हो ही जाती है।

सुरेन्द्र—कहो न, क्या कहना चाहते हो ?

भोला—उधर देखिए, वह पौधा मुरझा चला है।

सुरेन्द्र—किसलिए ?

भोला—दो दिन से मैंने उसे पानी नहीं दिया, इसलिए !

सुरेन्द्र—तो तुम्हें पानी देना चाहिए ?

भोला—वह तो मैं दूँगा ही, लेकिन मालिक आपकी ज़मींदारी का पौधा भी देख-रेख माँगता है ! पुरखाओं की यह कमाई····

सुरेन्द्र—समाप्त हो जाये तो अच्छा है, भोला।

भोला—क्यों मालिक ?

सुरेन्द्र—इसने मेरे हृदय को पानी नहीं देने दिया ? इसने मेरे हृदय के सुमन को सुखा दिया है। आज मेरे जीवन का पौधा मुरझा चला है, भोला ! मैं अपनी ही ख़बर नहीं रख सकता, कारोबार को क्या देखूँ ! मेरे बागीचे का माली मुझे नहीं देखता।

[सुरेन्द्र की पत्नी कलावती का प्रवेश। उसके साथ एक युवक है।]

सुरेन्द्र—कला !

कला—जी ! (साथ के युवक से) आप चलें। मैं आती हूँ। (युवक चला जाता है। कला सुरेन्द्र के पास आती है। माली वहाँसे हट जाता है।)

कला—कहिए, क्या हुक्म है !

सुरेन्द्र—मैं पूछता था इस समय कहाँ जाना हो रहा है ?

कला—कुछ नहीं, ज़रा रीगल होटल तक जा रही हूँ।

सुरेन्द्र—क्यों ?

कला—ये अविनाश बाबू मेरे क्लास-फेलो हैं ! आज कई वर्ष बाद उनसे मिलना हुआ है तो क्या दो घड़ी उनसे बात भी न करूँ ?

सुरेन्द्र—अच्छा, कबतक आना होगा ?

कला—रात के बारह साढ़े बारह भी बज सकते हैं—शायद उनके साथ दूसरे शो में सिनेमा चली जाऊँ।

सुरेन्द्र—लेकिन···

कला—लेकिन क्या ? एक युग से पुरुष घर के बाहर अकेला घूमता रहा है। नारी ने कभी नहीं पूछा—कहाँ जा रहे हो—कब आओगे—बाहर क्या काम है ? आपको मेरा विश्वास···

सुरेन्द्र—आज की नारी पद-पद पर विश्वास की बात क्यों कहने लगी है ? कला ! नारी को रोकने का पुरुष को अधिकार नहीं है, यही तो तुम कहती हो ! यही तो आज की शिक्षा ने तुम्हें सिखाया है।

कला—तो नये युग का प्रकाश आपको बुरा लगता है। आपने बड़ी भूल की जो मेरी जैसी स्वच्छंद प्रकृति की स्त्री को अपने घर की चहारदीवारी में बंद करने का यत्न किया।

सुरेन्द्र—तुम जाओ कला ! मैंने कभी तुम्हें रोकने का प्रयत्न नहीं किया ! जिस व्यक्ति का अपने ऊपर ही अधिकार नहीं है—उसे दूसरे पर शासन करने का कैसे हो सकता है। इस भरे-पूरे संसार में केवल सूनापन मेरा है और इस संसार का केवल यह सुरेन्द्र तुम्हारा नहीं है—शेष सब कुछ तुम्हारा है, तुम्हारे

स्नेह का अधिकारी है ! तुम जाओ तुम्हें देर होती होगी !

कला—किंतु,…

सुरेन्द्र—किंतु, कुछ नहीं ! तुम मेरे जीवन की सांत्वना नहीं बन सकतीं। मेरा जीवन आज अपनी स्वाभाविक धारा से कट-कर सूखा जा रहा है तो मुझे कोई अधिकार नहीं कि तुम्हें भी अपने साथ सुखा डालूँ !

कला—इस युग में इतनी भावुकता ! इतनी शिक्षा प्राप्त करके भी आप हृदय के आवेगों पर शासन करना न सीख सके। बड़े आश्चर्य्य की बात है !

सुरेन्द्र—शिक्षा—हाँ—इसे हम शिक्षा ही कह सकते हैं—जो बुद्धि और मस्तिष्क की स्वतंत्रता के नाम पर हमारी वासनाओं को प्रज्वलित कर रही है। आज का युग भावुकता का शत्रु है—उस भावुकता का जिसने स्नेह का एक सुनहरा संसार बनाया था, जिसने आदर्श के प्रति श्रद्धा को जन्म दिया था ! इसी शिक्षा ने मुझे एक दिन विक्षिप्त कर दिया था। इसी शिक्षा ने तुम्हें विक्षिप्त कर दिया है—कला ! जाओ कला, तुम आज से पूर्ण स्वतंत्र हो।

कला—यह आप नाराज़ होकर कह रहे हैं ?

सुरेन्द्र—नहीं दुखी होकर ! मैंने सोचा था—यह फूल जो डाल से टूट गया था—तुम्हारे स्नेह से सिंचकर कुछ घड़ियाँ और शांति की हँसी हँस लेगा। किंतु, तुम स्वयं ऐसे आकाश में उड़ रही हो—जहाँ कोई आधार नहीं है। मैं कैसे तुम्हें अपना आधार बना सकता हूँ।

कला—किंतु, किसी मनुष्य को आधार चाहिए ही क्यों ? सबका

स्वतंत्र व्यक्तित्व है। किसीसे स्नेह पाने और किसीको स्नेह देने की लालसा उसे क्यों होनी चाहिए ?

सुरेन्द्र—तुम यही तो कहती हो कला—कि हमें गृहस्थी की जरूरत नहीं है—जहाँ परिवार का प्रत्येक प्राणी एक दूसरे से अविच्छेद्य है। स्नेह और ममता के सूत्र से एक है। तुम चाहती हो भारतीय गृहस्थी—होटल का रूप धारण करे—जहाँ प्रत्येक कमरे का अधिवासी दूसरे कमरेवाले से कोई संबंध नहीं रखता। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति का कार्य हो जाता है—किन्तु करनेवाला व्यापार समझकर करता है–उसमें स्नेह की स्निग्धता नहीं है–व्यापार की नीरसता है !

कला—यदि बुद्धि से देखा जाये तो मैं समझती हूँ—ऐसे जीवन में कोई हानि नहीं है !

सुरेन्द्र—ठीक है ! तो तुम जाओ ! देखो, वह युवक तुम्हें लेने इधर ही आ रहा है ! जाओ—इस घर रूपी होटल का दरवाज़ा तुम्हारे लिए सदा खुला हुआ है। यदि यह घर होता तो शायद इसके दरवाज़े बंद किये जा सकते।

[सुरेन्द्र चला जाता है और दूसरी ओर से अविनाश आता है]

अविनाश—तुमने तो बड़ी देर लगा दी, कला ! चलो न !

[हाथ पकड़ता है।]

कला—(हाथ छुड़ाती है) नहीं; मिस्टर अविनाश ! मैं आज नहीं जा सकती। मुझे क्षमा करो।

अविनाश—क्यों—क्या पतिदेव की आज्ञा नहीं है ?

कला—नहीं, यदि वे आज्ञा देना जानते तो, शायद मैं उसका उलंघन करना भी सीख जाती।

अविनाश—फिर क्यों नहीं चलतीं !

कला—प्रत्येक बात का उत्तर नहीं दिया जा सकता, अविनाश ! मैं समझती हूँ, हमारा जीवन बहुत अस्वाभाविक रूप में बह रहा है—हमें उसे रोकना चाहिए ।

अविनाश—मैं आज यह क्या सुन रहा हूँ ?

कला—देखो अविनाश, हम विद्यार्थी जीवन से एक हैं—आगे भी हमें एक होना चाहिए था ।

अविनाश—हम तो अब भी एक हैं ।

कला—तुमने सुरेन्द्र से विवाह कर लेने की सलाह देकर मुझे दो नावों में क्यों बैठा दिया, अविनाश ?

अविनाश—पागल हो—सुरेन्द्र का वैभव तुम्हें सुख के साधन जुटा सकता है। रह गया स्नेह, सो वह तो पुराने ज़माने की व्यर्थ भावुकता है। प्रत्येक ऐसा कार्य्य जिसमें मनुष्य अपने अस्तित्व को भूलता हो इस युग के लिए उपयुक्त नहीं है। शरीर की आवश्यकताओं की भाँति ही शरीर की वासनाएँ भी हैं—और उन्हें मनुष्य संसार में कहीं भी पूरी करले। तुममें बार-बार पुराने संस्कार जाग उठते हैं। यह निर्बलता है। तुम्हें इसके ऊपर उठना चाहिए। चलो सिनेमा का समय हो गया ।

[हाथ पकड़कर ले जाता है ।]

[पट- परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान-अस्पताल का एक कमरा । सुरेन्द्र एक पलंग पर लेटा हुआ है । उसका सारा शरीर एक चादर से ढका हुआ है,

केवल मुँह खुला हुआ है। सर में पट्टी बँधी हुई है। पास ही कुमुद नर्स के रूप में बैठी हुई है। सहसा सुरेन्द्र आँखें खोलता है और पास बैठी हुई कुमुद का हाथ अपने हाथ में लेता है।]

सुरेन्द्र—कुमुद ! तुम यहाँ !

कुमुद—हाँ, क्या मेरा यहाँ होना तुम्हें अच्छा नहीं लगता।

[अपना हाथ सुरेन्द्र के हाथ से छुड़ाते हुए]

सुरेन्द्र—तुम्हें अच्छा लगता है ?

कुमुद—क्यों नहीं, यहाँ मनुष्यों की सेवा करने का अवसर मिलता है। ऐसी सेवा जिसमें वासना का आवेग नहीं है। जिसमें चिर-शान्ति है। नारी स्नेह और सेवा किये बिना जी नहीं सकती—इसीलिए जब तुमने मेरा भार स्वीकार करने से इन्कार कर दिया तब मैंने मन की शांति के लिए यह रास्ता पकड़ा।

सुरेन्द्र—तुमने मुझे अवसर ही नहीं दिया, कुमुद !

कुमुद—मैं तुम्हारे साथ कठोरता करना तो चाहती थी लेकिन जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि तुम विवाहित हो मैंने तुम्हारे गृह-मन्दिर में अपनी भ्रष्ट प्रतिमा को स्थापित करना उचित नहीं समझा।

सुरेन्द्र—ओह ! तुमने मेरी प्रतीक्षा भी नहीं की। मैं तुम्हें अपने घर की रानी बनाता। मैं तुम्हें लेने तुम्हारे घर गया तो ज्ञात हुआ, तुम न जाने कहाँ चली गयी हो।

कुमुद—हाँ, चले जाने के सिवा मेरे पास चारा ही क्या था ? मेरी माँ ने कहा—अपना पाप रात्रि के अंधकार में चुप-चाप नदी में प्रवाहित कर दो।

सरेन्द्र—तो फिर (उठ बैठता है।)

कुमुद—लेकिन शिक्षा ने मेरे मातृत्व को मार नहीं दिया था। मैं माँ थी—किंतु, माँ बनने की अधिकारिणी नहीं थी। समाज मुझे माँ के रूप में स्वीकार करने को प्रस्तुत नहीं था। यदि समाज से विद्रोह करना चाहती तो उसके लिए एक ही रास्ता था।

सुरेन्द्र—क्या?

कुमुद—यही कि मैं बाजार में बैठकर रूप का व्यापार करती। निर्लज्जता की ओढ़नी ओढ़कर समाज के कर्णधारों को अपने रूप से घायल करती। किंतु, मुझे यह जीवन पसन्द न था। मैंने तुम्हें अपना शरीर देकर अपराध किया था किंतु उस पाप को पुण्य बनाने की मुझे आशा थी। जिस दिन यह आशा टूट गयी—मुझे अपना जीवन अपरिचय के अन्धकार में छिपाना आवश्यक हो गया।

सुरेन्द्र—लेकिन, तुम अपने ही घर क्यों नहीं रहीं। समाज से क्यों डरीं। समाज के सामने मुख्य अपराधी को उपस्थित करने में क्यों हिचकीं!

कुमुद—इसलिए कि समाज का आधार नारी का आत्म-समर्पण और कष्ट-सहन है। जिस दिन मैं सत्य को प्रकाशित करती उस दिन तुम और तुम्हारा संपूर्ण परिवार समाज के क्रोध की आँधी में उड़ जाता या तुम धन के बल से उसका वेग सह भी लेते तब भी परिवार की आंतरिक शांति तो सदा के लिए समाप्त हो ही जाती। जिस कार्य में समाज का आशीर्वाद नहीं है वह शांति-प्रद हो ही नहीं सकता।

सुरेन्द्र—किंतु, समाज का प्रत्येक नियम व्यक्ति को मान्य ही होना चाहिए क्या?

कुमुद—नहीं ! समाज की कट्टरता मानव की गति को रोकती है ।
मैं कहती हूँ समाज से खुलकर विद्रोह करने का साहस करो—
छिपकर पाप करने की कायरता से हम समाज को जीत
नहीं सकते ।

सुरेन्द्र—यह विवेक तुमने कहाँ पाया ?

कुमुद—यह तो भारतीय नारी के प्राणों में बसा हुआ है । वह
नयी रोशनी की चकाचौंध थी जिसने मुझे एक क्षण के लिए
भुलाकर तुम्हारे पशुत्व का शिकार बन जाने दिया ।

सुरेन्द्र—इस पशु से तुम घृणा करती हो ।

कुमुद—घृणा ! यदि मैं नारी हूँ—तो जिसे एक बार भूल से भी
अपना बनाया है—उसे जीवन भर भूलना असंभव है
तुम्हारा पाप ही मेरे लिए सबसे बड़ा वरदान है । तुम्हारी
स्नेह-छाया या मृत्यु की गोद ये दो ही चीजें हैं जो मुझे
आश्रय दे सकती हैं ।

सुरेन्द्र—लेकिन क्या तुम मुझे आश्रय नहीं दे सकतीं ।

कुमुद—एक दिन मैंने तुमसे आश्रय माँगा था ।

सुरेन्द्र—और मैंने इन्कार किया था, क्या इसका बदला लोगी !
मुझे फिर उसी रात-दिन जलाते रहनेवाले वैभव की कठोर
गोद में फेंक देना चाहती हो ।

कुमुद—मेरा बस होता तो मैं आजीवन तुम्हारी सेवा करती ।
वासना ने मुझे तुम्हारे पास पहुँचाया । विवेक ने दूर कर दिया ।
अब क्या फिर वासना के प्याले पीने होंगे ।

सुरेन्द्र—नहीं कुमुद ! समय की आग ने मेरे वासना के पशु को
मार डाला है । मैं तो तुम्हें अपने गृह-मन्दिर की देवी

बनाकर ले चलना चाहता हूँ या तुम्हारे साथ गरीबी के कष्ट सहकर अपने जीवन को सार्थक करना चाहता हूँ। मुझसे वह कृत्रिम और सूखा जीवन नहीं बिताते बनता। आज मेरे घर में मेरा कोई नहीं है। माँ गयीं—बाप गये। मेरे माता-पिता ने जिस उच्च कुल की शिक्षित लड़की से मेरा विवाह किया है—वह विवाह को केवल एक व्यापार समझती है। इस व्यापार में मुझे कोई रस नहीं आता।

कुमुद—मैं अपनी एक बहन का अधिकार कैसे छीन सकती हूँ।

सुरेन्द्र—उसका मुझपर ज़रा भी मोह नहीं है, कुमुद! इस विस्तृत संसार में उड़ने के लिए उसे बहुत जगह है। उसे केवल धन चाहिए वह मैं उसे दे सकता हूँ—इससे अधिक वह कुछ नहीं चाहती।

कुमुद—लेकिन जब जवानी का वेग कम होगा—तब उसे किसी चीज़ की जरूरत पड़ेगी, सुरेन्द्र बाबू। उस समय उसे आप नहीं मिलेंगे तो दुख होगा। उसे आकाश में स्वच्छन्द उड़ने वाली तितली मत बनने दो। पुरुष को कभी-कभी नारी पर शासन करना आवश्यक है। इसी तरह नारी को पुरुष पर अपना अधिकार स्थापित करना भी। आज जो पुरुष नारी-स्वातंत्र्य की आवाज़ उठा रहे हैं वह केवल इसलिए कि दूसरे की नारियों से मिलने में उन्हें सुविधा हो। यह उनकी मनुष्यता की नहीं पशुता की आवाज़ है। तुम पुरुष बनो और पुरुष की कठोरता ग्रहण करो।

सुरेन्द्र—किन्तु. वह मेरी नहीं है। वह किसी और को...

कुमुद—तुम अपने स्नेह से उसके पाप को धो दो। उसका इति-

हास भूल जाओ। अपना इतिहास भी भूल जाओ। मनुष्य से भूलें होती हैं—उसे ऊपर उठने का अवसर मिलना चाहिए।

सुरेन्द्र—इतना बलवान मैं नहीं हूँ। मैं उसकी इतनी स्वाधीनता नहीं सह सका—मेरी दुर्बलता मुझे यहाँ खींच लायी—मेरी निराशा मुझे बाजार के रूपालय में ले चली। शराब की मात्रा दिन-दिन बढ़ चली। उस दिन जब मेरी मोटर पेड़ से टकरा गयी थी—मैंने बेतरह पी रखी थी। मेरे पास बैठी हुई 'सरोज' गाती चल रही थी—'उड़ रहा पंछी किधर तू नीड़ तेरा जल रहा है।' उस गीत की पहली पंक्ति मेरे कलेजे से जा टकरायी, और मोटर भी पेड़ से जा भिड़ी। और उस दुर्घटना ने मुझे यहाँ पहुँचा दिया।

कुमुद—कभी-कभी बुराई से भी भलाई निकल आती है।

सुरेन्द्र—निश्चय ही। यहाँ आकर मेरे हृदय का घाव भी मानो भरने लगा है। अब तुम्हें यहाँसे मेरे साथ चलना होगा। ताकि फिर ऐसी दुर्घटना न हो। मेरे अतृप्ति का उन्माद केवल तुम्हारा शासन सह सकता है।

[कुमुद का हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचता है, इतने में कला कमरे में प्रवेश करती है]

कला—ठीक। दुर्घटनाएँ करके इलाज के बहाने अपनी वासना का आधार खोजना भी शायद पुरुष की बुद्धि का चमत्कार है।

सुरेन्द्र—कला। तुम आ गयी हो। और तुमने मेरा सबसे बड़ा पुण्यभरा पाप देख भी लिया है, यह अच्छा ही हुआ।

कला—और अब हममें समझौता हो सकता है। मेरी भूलें भी तुम भूल सकते हो। दो दुर्बल हृदय मिलकर बलवान बन

सकते हैं। ठीक दो वर्ष हो गये हैं—मैं रोज ही तुम्हारी राह देखती रही हूँ। मेरे पंख आसमान की आधारहीनता में उड़-उड़कर थक गये हैं—मुझे सहारा चाहिए, स्वामी।

[एक पाँच वर्ष का बालक आता है]

बालक—माँ।

सुरेन्द्र—ओ आनन्द, इधर आओ।

[बालक जाकर सुरेन्द्र की गोद में जा बैठता है]

कला—यह कौन है ?

सुरेन्द्र—यह मेरा पुत्र है—और यह नर्स इसकी माँ।

कला—(कुमुद से) आज से यह मेरा है। और (सुरेन्द्र बाबू की ओर इशारा करके) ये आज से तुम्हारे। (कुमुद का हाथ अपने हाथ में लेकर) तुम्हें हमारे साथ चलना पड़ेगा। तुम हमारे गृह-मंदिर की देवी बनकर रहना। यह हमारे घर का कन्हैया होगा।

[आनन्द का मुँह चूमती है]

पटाक्षेप

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग का नाटक साहित्य

१. **कौन जागता है ? :** लेखक—विनायक नन्दशंकर मेहता

(सामाजिक समस्याओं पर लिखा गया नाटक) मूल्य ||)

२. **जयन्त :** लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

(सुखांत और आदर्शवादी सामाजिक नाटक) मूल्य |||)

३. **प्रेम-लोक :** लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

(महिलोपयोगी सामाजिक नाटक) मूल्य |||)

४. **वफ़ाती-चाचा :** लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

(हिन्दु-मुस्लिम एकता का समर्थक) मूल्य ||)

५. **पेखन :** लेखक—रामनरेश त्रिपाठी

(स्कूल और घर में खेलने के छोटे-छोटे नाटक) मूल्य |=)

६. **मन्दिर :** (सात एकांकी नाटक) लेखक—हरिकृष्ण 'प्रेमी'